उपहार

श्री जिनवाणीभक्त श्रीमंत सेठ कुन्दनलाल हजारीलाल जी

हैदराबाद (हैदराबाद) वालों की ओर से

धर्मदिवाकर पूज्य ब्र० श्री गुलाबचन्द जी महाराज व

त्यागमूर्ति श्री विमलादेवी जी द्वारा

सल्लेखना योजना के हीरोपलक्ष में की गई

तिलक-प्रतिष्ठा के समय

भेंट

श्रीमान् ---

--- वालों को।

वैशाख वदी ३ सं० २०१५ ★ दिनाङ्क ६-४-५८ ई०

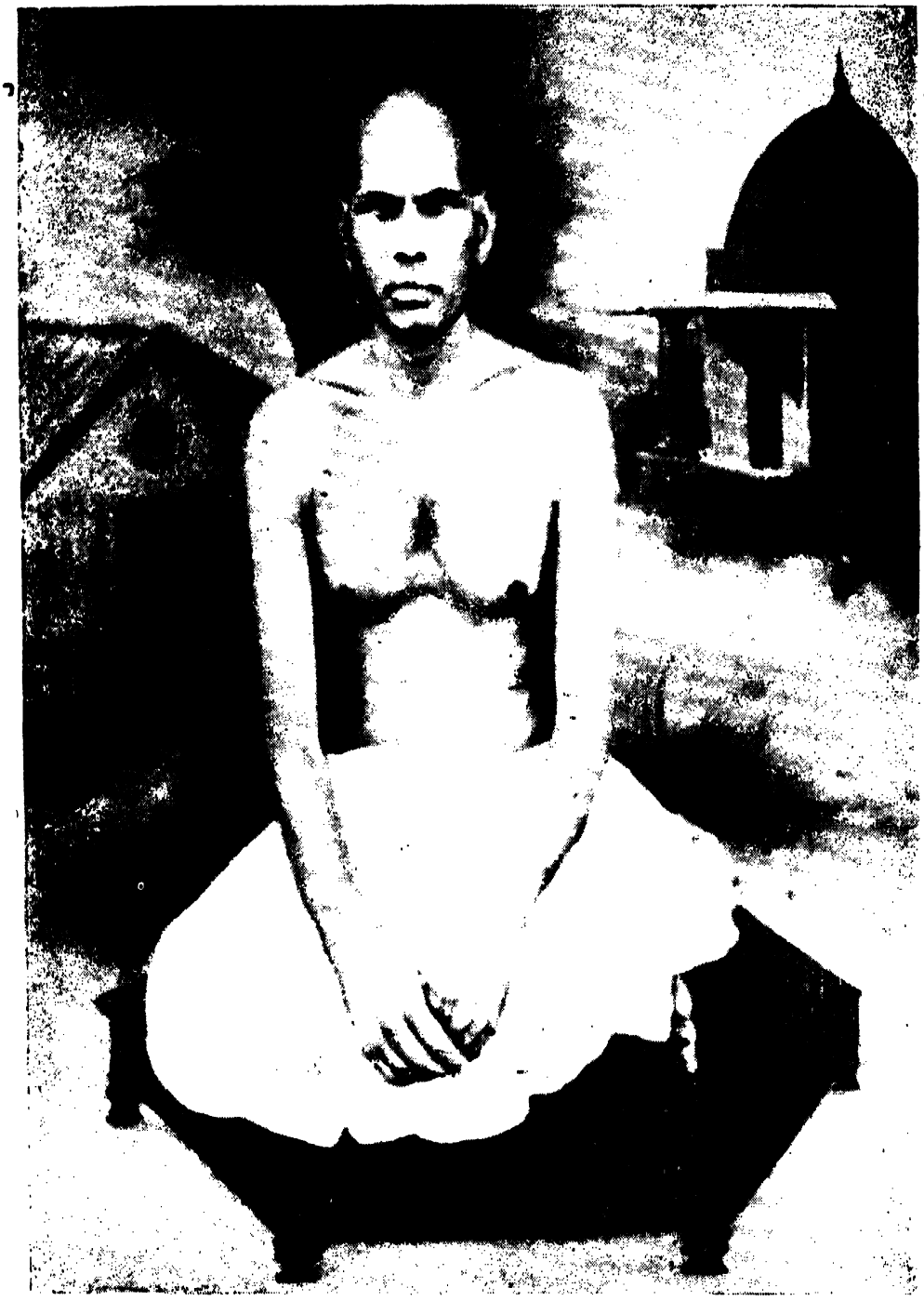

तारणसमाज भूषण, धर्मदिवाकर १०३ श्री पूज्य

ब्रह्मचारी श्री गुलाबचन्द जी महाराज

(इस ग्रन्थ के संकलनकर्ता एवं सम्पादक)

मेरे दो शब्द

यह तारण वाणी जिसमें संत श्री तारण स्वामी रचित चौदह ग्रंथों के कुछ वह अंश जोकि तारण स्वामी के आध्यात्मिक विचारों को स्फुट करते हैं व उसके समर्थन करने वाले कुन्दकुन्दादि आचार्यों के प्रमाणों का संकलन किया गया है। यह संकलन उस समय किया गया था जब कि मैंने तपोभूमि १००८ श्री निश्रेया–सेमरखेड़ी जी क्षेत्र पर वि० सं० २०१२ में चार माह का मौन पूर्वक एकांतवास किया था।

उस समय विचार आया कि कुछ ऐसे प्रमाण समाज के हाथों में पहुँचा दूँ जिनके द्वारा तारण समाज को यह बल मिले कि हमें जिस तारणपंथ धर्म के पथ पर श्री गुरुमहाराज ने लगाया है वह कितना परिमार्जित जैनधर्म का वास्तविक रूप है और आगम प्रमाण, अनुमान प्रमाण तथा प्रत्यक्ष प्रमाण से अबाधित है। और जिस पर चल कर केवल एक तारण समाज ही नहीं, मानव मात्र अपने कल्याण–पथ का पथिक बन सकता है।

पाठक महानुभावों से मेरा अनुरोध है कि इसे निष्पक्ष भाव से हंसवृत्ति द्वारा अध्ययन करें और जहां कहीं जो त्रुटि रह गई हो उसे लक्ष्य में न लें।

—ब्र० गुलाबचन्द्र।

भूमिका

जिसने अपने जीवनकाल में उस तत्व को पहिचाना जिसे परमतत्व कहा गया है, उसका गंभीर चिंतन और मनन किया और दूसरों को उस का दिग्दर्शन कराया ऐसे परम गुरुवर्य्य श्रीमत् तारण स्वामी जी ने अपने अनुभवों को जनता के सामने रखा, जब कि परम कल्याणकारी 'आत्म धर्म' आडम्बरपूर्ण क्रियाकांडों से आच्छादित हो चुका था, सत्य का आभास मिलना भी कठिन हो रहा था, ऐसे समय में अनेकानेक विरोधों का सामना करते हुये प्राणों की बाजी लगाकर भी 'सत्य' को ही सत्य कहने का साहस स्वामीजी ने किया, धर्म का वास्तविक स्वरूप जनता के समक्ष रखा, निःसार क्रिया-काण्डों व धर्म के नामपर जड़वाद को प्रोत्साहन देनेवाली धार्मिक मान्यताओं का निर्भीक विरोध किया व उनके विपरीत आन्दोलन भी। फलतः अनेकों कष्ट और कठिनाइयां उन्हें उठानी पड़ीं, पर वह अपने अभीष्ट की ओर अबाध गति से चलते ही रहे। लोगों ने उनकी बात को सुना समझा, सत्य पाया और एक विशाल जनसमुदाय उनका अनुयायी हुआ।

प्रस्तुत 'तारण वाणी' ग्रन्थ में उन ही गुरुमहाराज की वाणी का संकलन है, जिसका संपादन धर्मदिवाकर तारण समाज भूषण, पूज्य श्री ब्रह्मचारी गुलाबचन्द जी महाराज ने परमपूज्य गुरुवर्य्य श्री तारण स्वामी जी की तपोभूमि पुण्यक्षेत्र श्री सेमरखेड़ी व समाधिस्थल तीर्थक्षेत्र श्री निसईजी में वि० सं० २०१० में एकान्तवास व मौन व्रत साधन करते हुये किया था और उनके इस तपोत्कर्ष के अवसर पर इस ग्रन्थ के प्रकाशन का भार जिनवाणी भक्त श्रीमत सेठ कुन्दनलाल जी हैदरगढ़ वालों की धर्मपत्नी सौ० सेठानी श्रीमती शक्करबाई ने लिया था। अत्यंत हर्ष है कि उनका वह शुभ संकल्प शीघ्र ही पूरा हो रहा है और यह ग्रंथ प्रकाशित होकर पाठकों को 'तारण वाणी' का रसास्वादन करा सकेगा।

पूज्य श्री ब्रह्मचारी जी ने श्रीमद् परमपूज्य श्री तारणस्वामी कृत ग्रन्थों के संकलन ग्रन्थ श्री "अध्यात्मवाणी" का सार और स्वामी जी के आध्यात्मिक सिद्धांतों की प्रमाणिकता को पुष्ट करनेवाले महान आध्यात्मिक श्री कुन्दकुन्द आचार्य, योगीन्द्र, देव उमास्वामि प्रभृत आचार्यों के वचनामृतों का यथास्थान संग्रह करके ग्रन्थ को अत्यंत उपयोगी और महत्वपूर्ण बना दिया है।

तारण समाज जिसकी धार्मिक मान्यता में मूर्ति-पूजा को स्थान नहीं है और जो केवल अध्यात्म धर्म का उपासक है उस के अतिरिक्त अन्यान्य अध्यात्मधारा का रसास्वादन करा सकेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

बांदा-२४-११-१९५७ }

विमलादेवी
साहित्यरत्न, शास्त्री।

जिनवाणीभक्त श्रीमन्त सेठ कुन्दनलाल जी

[जिन्होंने सपत्नीक आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा ली है]

जिनवाणीभक्त, श्रीमन्त सेठ साहब का

संक्षिप्त जीवन-परिचय

मानोरा जिला विदिशा निवासी श्री उत्तमचन्द जी, तस्य पुत्र श्री सेठ जमनादास जी, तिनके पुत्र श्री लखमीचन्द जी के दो पुत्र श्री कुन्दनलाल जी और हजारीलाल जी। श्री कुन्दनलाल जी की धर्मपत्नी श्री शक्करबाई व श्री हजारीलाल जी की धर्मपत्नी श्री इन्द्राणीबाई। इस तरह इन चार और केवल चार ही आत्माओं का परिवार जिसने अपनी यशपूर्ण प्रतिष्ठा, धार्मिक प्रणाली, धार्मिक प्रभावनाओं और तारण साहित्य तथा दान-सम्मान द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि उनका पूरा जीवन और पूरे जीवन की सब कमाई धर्मकार्यों में ही लगी, लग रही है और लगाने का ही एक मात्र संकल्प है; भावनायें हैं और उनकी अपनी स्वाभाविक वृत्ति है।

आप दोनों भाइयों और आपकी धर्मपत्नियों की एक नहीं अनेक ऐसी घटनायें हैं जो स्पष्ट कर चुकी हैं कि ये चारों ही आत्मायें साक्षात् पुण्यस्वरूप हैं और पुण्य-गति पाने की अधिकारिणी हैं।

१—आपने अपने जीवनकाल में ५ तिलक प्रतिष्ठायें कराईं। (१) मानौरा में, (३) १००८ श्री सेमरखेड़ी जी क्षेत्र पर (१) १००८ श्री निसई जी क्षेत्र में, जिसमें धर्मदिवाकर तारण समाजभूषण १०३ श्री पूज्य ब्रह्मचारी श्री गुलाबचन्द्र जी महाराज ने 'गृह त्याग ब्रह्मचर्य दीक्षा' ग्रहण की थी।

२—श्री सेमरखेड़ी जी क्षेत्र में-हजारी निवास व कुन्दन धर्मशाला का, तथा श्री सूखा निसई जी क्षेत्र में-श्री तारण द्वार और श्री निसई जी क्षेत्र में कुन्दन कुटीर का निर्माण कराया व दीक्षा स्थान पर पक्का चबूतरा बनवाया। कुन्दन कुटीर के उद्घाटन में लगभग पांच हजार रु० खर्च किये व संस्था को दान दिया।

३—श्री तारण तरण अध्यात्मवाणी जी और इस तारणवाणी ग्रंथ का प्रकाशन आपने कराया, जिन दोनों में लगभग पांच हजार रु० खच हुआ सो तो ठीक ही है, किन्तु यह दोनों ही प्रकाशन तारण पंथ धर्म की स्थाई प्रभावना वाले रहेंगे यह एक बहुत बड़ी बात हुई।

४—इस तरह उपरोक्त कार्यों के साथ ही साथ समय समय पर बड़ी बड़ी पात्रभावनाएं अनेक प्रसंगों पर की, अनेक संस्थाओं को यथावसर अच्छा दान दिया और अब निकट भविष्य में केवल

दो माह पीछे ही एक महीना की वह आदर्श सत्संग योजना की और उसके हर्षोपलक्ष में वर्तमान निवास स्थान हैदरगढ़ बासौदा जिला विदिशा में स्थानीय तिलक प्रतिष्ठा कराने की तैयारी कर रहे हैं, जिसमें लगभग १०००) रु० खर्च होंगे तथा साथ ही साथ श्री कुन्दनलाल जी और आपकी धर्मपत्नी श्री शक्करबाई जी ब्रह्मचर्य व्रत लेकर एक प्रकार से वानप्रस्थ आश्रम जिसे जैन शास्त्रों में उदासीन श्रावक कहा जाता है उस तरह की प्रतिज्ञा ग्रहण करेंगे, जबकि श्री हजारीलाल जी और आपकी धर्मपत्नी श्री इन्द्राणीबाई आज से ३ वर्ष पूर्व दोनों प्राणी एक ही साथ स्वर्गवासी होकर सती जैसा प्रभाव या चमत्कार दिखाकर एक अनुपम आदर्श छोड़ गये हैं, कि जिनकी रसोई के मिष्ठान्न ने अक्षय रिद्धि का रूप ले लिया था।

इस प्रकार आपके जीवन से सम्बन्धित एक नहीं अनेक घटनाएँ उल्लेखनीय हैं और अनुकरणीय हैं, जिन्हें सुनकर मनुष्य के भीतर यह श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती कि — धर्म की कमाई धर्म में ही लगती है। पाप में अथवा व्यर्थ में नहीं जाती तथा यदि पल्ले में पुण्य का उदय है तो सर्प का दंश केवल डांस के डंक सदृश ही रह जाता है और धर्मकार्य में कितना भी खर्च करते चले जाओ फिर भी वह लक्ष्मी कमती नहीं प्रत्युत अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है।

इस तरह राम-लक्ष्मण जैसी जोड़ी आप दोनों भाइयों की जीवनी यदि पूरी कथानक के साथ लिखी जाये तो एक पुस्तिका का रूप ले लेगी, उसका लिखा जाना हमें और हमारी भावी सन्तान को शिक्षाप्रद होगा ऐसी मेरी निष्पक्ष धारणा है, जो यदि समय मिला तो उसे संकलन करके समाज के सम्मुख प्रस्तुत करूँगा। इति शुभम्।

गुणानुरागी—

ताराचन्द समैया, ललितपुर।

तारणवाणी—

सम्यक् विचार

प्रथम धारा (पण्डित पूजा)

श्री तारणस्वामी—

सम्यक् विचार

●

प्रथम धारा (पण्डित पूजा)

ओम्

ओंकारस्य ऊर्ध्वस्य, ऊर्ध्व सद्भाव शाश्वतं ।
विन्दस्थानेन निष्ठंते, ज्ञानेन शाश्वतं ध्रुवं ॥१॥

ओम् रहा है और रहेगा, सतत उच्च सद्भावागार ।
परमब्रह्म, आनन्द ओम् है, ओम् अमूर्त शून्य-आकार ॥
ओम् पंच परमेष्ठी मंडित, ओम् ऊर्ध्व गति का धारी ।
केवल-ज्ञान-निकुंज ओम् है, ओम् अमर ध्रुव अधिकारी ॥

ओम् सनातनकाल से ऊर्ध्वगति का धारी रहा है, और रहेगा। ऊर्ध्व स्वामी तो यह है ही, किन्तु साथ ही साथ सद्भावों का धारी और शाश्वत भी है ।

इसमें शून्य को एक प्रमुख स्थान दिया गया है, और शून्य में इसका निवास भी है, जिसका तात्पर्य यह है कि यह मुक्त है, स्वाधीन है ।

इसका वास व्यवहार दृष्टि से तो मोक्ष-स्थान में कहा जाता है जहाँ पहुँचने पर इसकी संसार-यात्रा समाप्त हो जाती है और फिर वहाँ से लौटकर नहीं आता, किन्तु वस्तुस्वरूप अथवा निश्चय दृष्टि से उसका अपना निवास तो अपने आपमें ही रहता है । भले ही वह आज हमारे इस शरीर में है और कल (अगले जन्म में) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अनुकूलता पाकर मोक्ष-धाम में जा विराजे ।

यही तो वह सिद्धांत है कि—"आत्मपरमात्मतुल्यं च विकल्प चित्त न क्रीयते" तथा ज्ञानों में सबसे श्रेष्ठ जो केवलज्ञान है उस ज्ञान से यह ओम् पद मंडित है और ध्रुव तारा के समान चमक कर संसार को अनादिकाल से सन्मार्ग बता रहा है और बताता भी रहेगा । हाँ, उसके बताए हुये मार्ग पर चलना न चलना हमारी इच्छा पर निर्भर है । चलेंगे तो संसार पार हो जायेंगे अन्यथा अनादिकाल से संसार में भटक रहे हैं और अनन्तकाल तक भटकते रहेंगे ।

सम्यक् विचार

"महावीर की विचारधारा व्यक्तिमूलक थी। भारतीय संस्कृति में भी विचारों की एकता की अपेक्षा उनके समन्वय का अधिक महत्व रहा है, विचारों के समन्वय को ही स्याद्वाद कहते हैं। सत्य को समग्ररूप से जानने के लिए जब हम उसे कई दृष्टियों से देखते हैं तो ज्ञान में नम्रता आती है और मन से दूसरे के विचारों के प्रति आस्था जगती है। संक्षेप में उनके कथन के अनुसार समाज-रचना का आधारभूत तत्त्व योग्यता है, जन्म नहीं; व्यक्ति का आदर्श अकिंचनता है, संचय नहीं; और लोकसेवा की कसौटी विचारों का समन्वय है, एकता नहीं।"

"भारतीय संस्कृति उस महानदी के समान है जिसमें नाना विचार-प्रवाह मिलते हैं और जिससे निकलते भी हैं, पर जो लोक में हमेशा बहती रहती है, उसके तट पर कई तीर्थ बने और मिटे। तीर्थङ्कर महावीर ने भी लगभग ढाई हजार वर्ष पहले एक सर्वोदय तीर्थ की रचना की थी, भले ही वह आज समय के प्रवाह में बिखरी प्रतीत हो, पर उसके निर्माण की कला अमिट है, और कोई चाहे तो नये तीर्थ के निर्माण में उसका उपयोग कर सकता है। उनकी यह कला थी कि लोक की उपासना के लिए लोक की वासना छोड़ दो, साधना द्वारा अपने आपको इतना तरल बनाओ कि लोक में घुलमिल सको, युग की आस्तिकता के अनुसार समन्वय-दृष्टि में ऐसे आदर्श चुनो और उन्हें जीवन में ढालो कि तुम्हारा जीवन भावी समाज की जीवनपद्धति का आधार बन जाए।

निश्चयनय जानंते, शुद्ध तत्व विधीयते ।
समात्मा गुणं शुद्धं, नमस्कारं शाश्वतं ध्रुवं ॥२॥

जिन्हें वस्तु के सत् चित् ज्ञायक, या निश्चयनय का है ज्ञान ।
वही अनुभवी पारखि करते, निज स्वरूप की सत् पहिचान ॥
अन्तस्तल-आसीन आत्मा, ही है अपना देव ललाम ।
आत्मद्रव्य का अनुभव करना, ही है सच्चा अचल प्रणाम ॥

जो पुरुष निश्चय नय और केवल निश्चय नय को ही वस्तु को परखने की कसौटी मानते हैं, केवल वही इस संसार में सत् और असत् की वास्तविक परीक्षा कर सकते हैं, और केवल वही शुद्धात्मा के गुणों को परख सकने में समर्थ हो पाते हैं। उन जैसे समर्थवान पुरुषों को ही सम्यग्दृष्टि पुरुष कहा जाता है ।

अपने अंतस्तल में जो आत्मदेव विराजमान है वही निश्चयनय से वह देव है जिसे जिनवाणी हितोपदेशी, वीतराग, सर्वज्ञ और मोक्षप्रदायक के नाम से संबोधन करती है। ऐसे शुद्धात्मा रूपी जगत-प्रभू को मैं ध्रुव एवं शाश्वत मानकर दृढ़ निश्चयपूर्वक (अचल भाव से) नमस्कार करता हूँ।

★

ॐ नमः विंदते योगी, सिद्धं भवत् शाश्वतं ।
पंडितो सोपि जानंते, देवपूजा विधीयते ॥३॥

योगीजन नित ओम् नमः का, शुद्ध ध्यान ही धरते हैं ।
'सोऽहं' पद पर चढ़कर ही वे, प्राप्त सिद्ध-पद करते हैं ॥
'ओम् नमः' जपते जपते जो, निज स्वरूप में रम जाता ।
वही देवपूजा करता है, पंडित वह ही कहलाता ॥

जो वास्तविक योगी-मुनि होते हैं वे नित प्रति " ॐ नमः " का ही पारायण किया करते हैं और इसी मंत्र के पारायण-पोत पर चढ़कर वे भवसागर से पार होकर सिद्ध और शाश्वत पद प्राप्त कर लेते हैं ।

जो 'ओम् नमः' का मनन करते ही निजस्वरूप में लवलीन हो जाता है वही उसकी सच्ची देवपूजा करता है और वही सच्चा पंडित है, ज्ञानी है, सम्यग्दृष्टि है।

ह्रींकारं ज्ञान उत्पन्नं, ओंकारं च वंदते ।
अरहं सर्वज्ञ उक्तं च, अचक्षु दर्शन दृष्टते ॥४॥

जगतपूज्य अरहन्त जिनेश्वर, जिसका देते नव उपदेश ।
साम्य दृष्टि सर्वज्ञ सुनाते, जिसका घर घर में सन्देश ॥
जो अचक्षु-दर्शन-चख गोचर, जो चित चमत्कार सम्पन्न ।
ओंकार की शुद्ध वंदना, करती वही ज्ञान उत्पन्न ॥

जिसका अरहंत प्रभु उपदेश देते हैं और जिस सन्देश को वे ही सर्वज्ञ भगवान प्रत्येक प्राणी तक पहुँचाते हैं, उस ओम् महापद की या अपनी शुद्धात्मा की वह वन्दना उसके अपने अन्तरंग में उस विशुद्ध ज्ञान की सृष्टि सृजन कर देती है जो कल्पनातीत होती है। और केवल उसकी अपनी आत्मा ही जिसका रसास्वादन करती है तथा उसके चमत्कार को उसके ज्ञान-नेत्र ही देखते हैं।

★

मति श्रुतश्च संपूर्ण, ज्ञानं पंचमयं ध्रुवं ।
पंडितो सोपि जानंते, ज्ञानं शास्त्र स पूजते ॥५॥

मति,श्रुत, अवधि, मनःपर्यय से, ज्ञान करें जिसमें कल्लोल ।
पंच ज्ञान केवल भी जिसमें, छोड़ रहा नित ज्योति अलोल ॥
ऐसे आत्म-शास्त्र को ही नित, जो पूजे विवेक-शिरमौर ।
वही सत्य पंडित प्रज्ञाधर, वही ज्ञान-धन का है ठौर ॥

जिसमें मति, श्रुत, अवधि,मनःपर्यय और यहां तक कि केवलज्ञान भी अपने प्रकाश-पुंज बिखरा रहा है, अथवा जो पांचों ज्ञान का एक मात्र निधान है ऐसे आत्मा रूपी शास्त्र की ही जो विज्ञजन पूजा करते हैं, वे ही वास्तव में पंडित हैं और प्रज्ञा उन्हीं में ठौर पाकर अपने जीवन को कृतकृत्य मानती है।

ॐ ह्रीं श्रियंकारं, दर्शनं च ज्ञानं ध्रुवं ।
देवं गुरुं श्रुतं चरणं, धर्मं सद्भावशाश्वतं ॥६॥

ह्रीं श्रीं के रूप मनोहर, करते जिसमें विमल प्रकाश ।
अमर ज्ञान दर्शन का है जो, एक मात्रतम दिव्य निवास ॥
वही परम उत्कृष्ट ओम् ही, है त्रिभुवन मंडल में सार ।
वही देव, गुरु, शास्त्र, आचरण, वही धर्म सद्भावागार ॥

जिसमें 'ॐ ह्रीं श्रीं' इस मंत्र का पूर्णरूपेण निवास है, दर्शन, ज्ञान और आचरण का जो मन्दिर है, वास्तव में ऐसा वह ओम् ही सच्चा देव है, ओम् ही सच्चा गुरु है, ओम् ही सच्चा क्रियायुक्त आचरण है और ऐसा वह ओम् ही तीन लोक को पार करने वाला सच्चा धर्म है जिसका कि घट घट में सद्भाव है ।

वीर्यं अँकूरणं शुद्धं, त्रैलोकं लोकितं ध्रुवं ।
रत्नत्रयं मयं शुद्धं, पंडितो गुण पूजते ॥७॥

केवलज्ञान-मुकुर में जिसको, तीनों लोक दिखाते हैं ।
जिसके स्वाभाविक बल जल का, निधिदल थाह न पाते हैं ॥
रत्नत्रय की सुरसरिता से, शुद्ध हुआ जो द्रव्य महान् ।
उसी आत्म रूपी सद्गुरु की, करते हैं पूजन विद्वान ॥

जिसको अपने केवलज्ञान मुकुर में संसार के सब पदार्थ युगपत दृष्टिगोचर होते हैं; जिसकी शक्ति कल्पना से परे है, अनंत है, असीम है, तथा रत्नत्रय की पवित्र निर्झरिणी जिसके चरण अहर्निश पखारती रहती है; विद्वान् केवल ऐसे आत्मा रूपी सद्गुरु की ही अर्चना करते हैं और ओम् या आत्मा रूपी सद्गुरु को पूजने वाला पंडित ही वास्तविक प्रज्ञाधारी पंडित कहा जाता है-माना जाता है ।

देवं गुरुं श्रुतं वंदे, धर्मशुद्धं च विंदते ।
तिअर्थ अर्थलोकं च, स्नानं च शुद्धं जलं ॥८॥

आतम ही है देव निरंजन, आतम ही सद्गुरु भाई ।
आतम शास्त्र, धर्म आतम ही, तीर्थ आत्म ही सुखदाई ॥
आत्म-मनन ही है रत्नत्रय-पूरित अवगाहन सुखधाम ।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर, धर्मतीर्थ को सतत प्रणाम ॥

आत्मा ही सच्चा देव है; आत्मा ही सचा गुरु है; आत्मा ही सच्चा शास्त्र है; आत्मा ही सच्चा धर्म है और आत्मा ही सच्चा तीर्थ है। और यदि वास्तव में पूछा जाय तो रत्नत्रय से पूरित इस आत्मा का मनन ही एक मात्र सच्चा स्नान है।

ऐसे आत्मा रूपी देव, गुरु, शास्त्र, धर्म और तीर्थ को मैं नित्य मन वचन काय से प्रणाम करता हूँ।

चेतना लक्षणो धर्मो, चेतियंति सदा बुधै ।
ध्यानस्य जलं शुद्धं, ज्ञानं स्नान पंडितः ॥९॥

चिदानन्द ध्रुव शुद्ध आत्मा, की चेतनता है पहिचान ।
बुद्धिमान जन नित्य निरन्तर, धरते हैं उसही का ध्यान ॥
नदी सरोवर में करते हैं, अवगाहन जड़ अज्ञानी ।
आत्म-ज्ञान-जल से प्रक्षालन, करते सत्पंडित ज्ञानी ॥

आत्मा का लक्षण चेतना से संयुक्त है और इसी चेतना के नाते, बुद्धि के धनी बुद्धिमान जन उसका अहर्निश मनन करते हैं।

नदी, सरोवर और कुण्डों में तो (धर्मभाव से) केवल स्थूल-बुद्धि के मानव स्नान करते हैं, किन्तु जो प्रज्ञाधारी पंडित होते हैं, वे आत्म-मनन के जलाशय में ही स्नान करके अपने को पूर्ण पवित्र और कृत्यकृत्य मानते हैं।

शुद्धतत्वं च वेदंते, त्रिभुवनम् ज्ञानेश्वरं ।
ज्ञानं मयं जलं शुद्धं, स्नानं ज्ञानं पंडितः ॥१०॥

हस्तमलकवत् जिसको तीनों भुवन चराचर प्राणी हैं ।
उसी ब्रह्म को ध्याते हैं बस, जो बुधजन विज्ञानी हैं ॥
शुद्ध आत्म है स्वच्छ सरोवर, कल कल करता जिसमें ज्ञान ।
इसी ज्ञानरूपी जल में नित, पंडित जन करते (हैं) स्नान ॥

जो अपने असीम ज्ञान से समस्त चराचर प्राणियों के घट घट की और तीनों लोक की समस्त बातों को हाथ में रखे हुये आँवले के समान देखता और जानता है, वही ज्ञान का ईश्वर ओम् या शुद्धात्मा विद्वानों के पूजन का एक मात्र आधार होता है ।

विद्वज्जन लोक की देखादेखी नदी, तालाबों में स्नान करके अपने को धार्मिक या पवित्र नहीं मानते, किन्तु ज्ञानपूर्ण जलाशय एक मात्र शुद्धात्मा में ही स्नान कर उनकी अपनी आत्मा विशुद्धता को प्राप्त होती है, ऐसा उनका अपना विश्वास रहता है ।

सम्यक्तस्य जलं शुद्धं, संपूर्णं सर पूरितं ।
स्नानं पिवत गणधरनं, ज्ञानं सरनंतं ध्रुवं ॥११॥

सम्यग्दर्शन रूपी जिसमें, भरा हुआ है नीर अगम्य ।
ऐसा है वह परम ब्रह्म का, भव्यो ! सरवर अविचल रम्य ॥
महा मुनीश्वर श्री गणधर जी, जिनकी शरण अनेकों ज्ञान ।
इस सर में ही अवगाहन कर, करते इसका ही जलपान ॥

जिनकी शरण में अनेकों ज्ञान ठौर पा रहे थे, वे गणधर प्रभु भी नदी सरोवर के जल से ही अपने को पवित्र हुआ नहीं मानते थे, किन्तु वे भी उसी जलाशय का उपभोग करते थे, जिसमें रत्नत्रय रूपी अगम्य नीर भरा हुआ है और जो मुमुक्षुओं के संसार में 'शुद्धात्मा' के नाम से प्रसिद्ध है तथा जो अपने ही पास है ।

शुद्धात्मा चेतनाभावं, शुद्ध दृष्टि समं ध्रुवं ।
शुद्धभाव स्थिरीभूत्वा, ज्ञानं स्नान पंडितः ॥१२॥

शुद्ध आत्मा है हे भव्यो ! सत् चैतन्य भाव का पुंज ।
सम्यग्दर्शन से आभूषित, मोक्ष प्रदाता, ज्ञान-निकुंज ॥
निश्चल मन से इसी तत्व को, शुद्ध गुणों का करना ध्यान ।
पंडित वृन्दों का बस यह ही, प्रक्षालन है सत्य महान् ॥

शुद्धात्मा, चेतना से संयुक्त प्रकाश का एक विशाल और अलौकिक पुंज है, सम्यक्त्व इसका प्रधान आभूषण है और अनश्वरता इसका वह गुण है जिसके कारण संसार में यह अपना सर्वोच्च स्थान रखता है व इसके समान यह गुण दूसरे किसी में नहीं पाया जाता। इस शुद्धात्मा में स्थिर होकर इसके ज्ञान-गुणों का चिंतवन करना ही पंडितों का एकमात्र वास्तविक प्रक्षालन है ।

प्रक्षालितं त्रति मिथ्यात्वं, शल्यं त्रियं निकंदनं ।
कुज्ञान राग दोषं च, प्रक्षालितं अशुभभावना ॥१३॥

धुल जाते इस ज्ञान-नीर से, तीनों ही मिथ्यात्व समूल ।
तीनों शल्यों को विनिष्ट कर, ज्ञान बना देता यह धूल ॥
अशुभ भावनाएं भी सारी, इस जल से धुल जाती हैं ।
राग द्वेष, कुज्ञान-कालिमा, पास न रहने पाती हैं ॥

शुद्धात्मा के इस सरोवर में स्नान करने से तीनों मिथ्यात्व समूल नष्ट हो जाते हैं; हृदय में दिन रात चुभने वाली तीनों शल्यें इसके जलस्पर्श से तत्काल निकल जाती हैं और कुज्ञान राग-द्वेष और अशुभ भावनायें तो फिर इसमें स्नान करने वाले विद्वान के साथ रहने ही नहीं पातीं; शरीर मल के समान वे भी उसकी आत्मा से एक साथ ही खिर जाती हैं, पृथक् हो जाती हैं ।

कषायं चत्रु अनंतानं, पुण्य पाप प्रक्षालितं ।
प्रक्षालितं कर्म दुष्टं च, ज्ञानं स्नान पंडितः ॥१४॥

पुण्य पाप दोनों रिपुओं को, क्षय कर देता है यह नीर ।
मलिन कषायें छिप जाती हैं, देख रश्मि से इसके तीर ॥
कर्म-नृपति की सेना को भी, कर देता यह जल-भट चूर्ण ।
ऐसा है यह ज्ञान-उदक का, अवगाहन मंगल-परिपूर्ण ॥

क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार अनन्तानुबन्धी कषायें भी फिर उसके साथ नहीं रह पातीं हैं जो इस आत्म-सरोवर में स्नान करता है, पुण्य पाप भी दोनों इसके जल से प्रक्षालित हो जाते हैं और अष्टकर्म की सेना तो इसके ज्ञान-नीर को देखते ही पलायमान होने लगती है । ऐसे इस आत्म-सरोवर में विद्वज्जन स्नान करते हैं । वास्तव में वे ही सच्चे पण्डितजन हैं ।

प्रक्षालितं मनश्चपलं, त्रिविधि कर्म प्रक्षालिते ।
पंडितो वस्त्र संयुक्तं, आभरनं भूषन क्रियते ॥१५॥

चंचल मन भी ज्ञान-नीर से, प्रक्षालित हो जाता है ।
द्रव्य, भाव, नोकर्म-यूथ भी, वहां न फिर दिख पाता है ॥
सम्यक् विधि से परम ब्रह्म को, जब उज्वल कर देता नीर ।
तब ज्ञानी जन धारण करते, हैं अपने आभूषण चीर ॥

जो मर्कट के समान चंचल है ऐसा वह मन भी इस आत्म-सरोवर के जल में स्नान करने से एकदम शांत हो जाता है। तीन प्रकार के कर्म—द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म इस जल से शनैः शनैः धुलते जाते हैं, और वह स्नान करने वाला पंडित निर्विकार स्थिति में पहुँच जाता है और उसके ज्ञान-दर्शनादि रूप जो अन्तरंग वस्त्राभूषण हैं उनसे वह शोभायमान हो जाता है, जिसके सामने बाह्य बहुमूल्य वस्त्राभूषणों की कोई कीमत नहीं ।

वस्त्रं च धर्म सद्भावं, आभरणं रत्नत्रयं ।
मुद्रका सम मुद्रस्य, मुकुटं ज्ञानमयं ध्रुवं ॥१६॥

शुद्ध आत्म-सद्भाव-धर्म ही, है पंडित का उज्वल चीर ।
झिलमिल करता रत्नत्रय ही, है उसका भूषण गंभीर ॥
समताभावमयी मुद्रा ही, है उसकी मुद्रिका अनूप ।
अविनाशी, शिव, सत्यज्ञान है, उसका ध्रुव किरीट चिद्रूप ॥

आत्म-सरोवर में रमण करने वाले विद्वान स्नान करने के बाद जिन आभरणों से अपनी देह सजाते हैं उनमें वस्त्र और आभूषण ये दो ही मुख्य सामग्री होती हैं। वस्त्र तो होता है उनका सद्भावरूपी धर्म, और आभूषणों में मुद्रिका होती है उनकी समता तथा मुकुट होता है उनका आत्मज्ञान। जो आत्म-ज्ञान सत्यं शिवं सुन्दरम् से युक्त होने से इन्द्र तथा चक्रवर्ती के मुकुटों को भी फीका कर देता है।

दृष्टतं शुद्ध दृष्टी च, मिथ्यादृष्टि च त्यक्तयं ।
असत्यं अनृतं न दृष्टन्ते, अचेत दृष्टिं न दीयते ॥१७॥

जो ज्ञानी-जन करते रहते, ज्ञान-नीर से अवगाहन ।
परमब्रह्म उनका दर्पण-वत, होजाता निर्मल पावन ॥
मिथ्यादर्शन को क्षय कर वे, शुद्ध दृष्टि हो जाते हैं ।
असत, अचेतन, अनृतदृष्टि से, फिर न दुःख वे पाते हैं ॥

जो ज्ञानीजन इस आत्म-सरोवर के नीर में अवगाहन करते रहते हैं, उनका अन्तरंग दर्पण के समान पवित्र हो जाता है। मिथ्यादर्शन को क्षय करके फिर वे शुद्ध दृष्टि हो जाते हैं और उनकी दृष्टि फिर असत्य, अनृत या अचेत की मान्यता की ओर भूलकर भी नहीं जाती। और उनकी शुद्ध दृष्टि में एकमात्र शुद्धात्मा ही झलकती है तथा उसी का वे मनन, ध्यान व चिंतवन करते हैं।

दृष्टं शुद्ध समयं च, सम्यक्त्वं शुद्धं ध्रुवं ।
ज्ञानं मयं च संपूर्ण, ममलदृष्टि सदा बुधैः ॥१८॥

ज्ञान-नीर के अवगाहन से, असत् भाव मिट जाता है ।
परम शुद्ध सम्यक्त्व मात्र ही, फिर हिय में दिख पाता है ॥
शुद्ध बुद्ध ही दिखते हैं फिर, आंखों में प्रत्येक घड़ी ।
दिखता है बस यही ज्ञान की, अन्तर में मच रही झड़ी ॥

ज्ञान नीर में स्नान करने से मिथ्यात्वभाव समूल नष्ट हो जाता है और फिर जहाँ तहाँ ज्ञानी को सम्यक्त्व की ही झांकियाँ दिखलाई पड़ती हैं। उसकी दृष्टि जहां जाती है वहां उसे फिर शुद्धात्मा की ही छवि के दर्शन होते हैं, जिस झांकी की झलक के सामने अब उसे कृत्रिम झांकियों के प्रति प्रेम अथवा मान्यता नहीं रह जाती और उसे आठों पहर ऐसा मालूम पड़ता है मानों अन्तर में ज्ञान की झड़ी लगरही है।

लोकमूढं न दृष्टंते, देव पाखंड न दृष्टते ।
अनायतन मद अष्टं च, शंकादि अष्ट न दृष्टते ॥१९॥

ज्ञान-नीर से मिट जाता है, तीन मूढ़ताओं का ताप ।
अष्ट मदों का मन-मन्दिर में, फिर न शेष रहता सन्ताप ॥
छह अनायतन डरते हैं फिर, नहीं हृदय में आते हैं ।
अष्ट दोष भी तस्कर नाईं, देख इसे छिप जाते हैं ॥

ज्ञानरूपी जल में स्नान करने से देवमूढ़ता, लोकमूढ़ता और पाखण्डमूढ़ता, इन तीनों का नाश हो जाता है। अज्ञानपूर्वक किये हुये ६ कर्मों में सुधार की लहर पैदा हो जाती है, आठों मद विला जाते हैं और शंकादिक अष्ट दोषों के भी पंख लग जाते हैं। तात्पर्य यह कि आत्म-सरोवर में स्नान करने से हृदय में प्रगाढ सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हो जाती है ।

दृष्टतं शुद्ध पदं सार्धं, दर्शन मल विमुक्तयं।
ज्ञानं मयं सुद्ध सम्यक्त्वं, पंडितो दृष्टि सदा बुधैः ॥ ८

सप्त तत्व का जो निदान है, अगम, अगोचर, मनभावन।
उसी 'ओम्' से मंडित दिखता, बुधजन को चेतन पावन॥
आत्म-देश में जहां कहीं भी, जाते उसके मन-लोचन।
उन्हें, वहीं दिखता है निर्मल, सम्यग्दर्शन दुख-मोचन॥

जो मनुष्य ज्ञान-नीर में निमग्न रहा करता है, स्नान करता रहता है उसकी दृष्टि जहाँ तहाँ शुद्धात्मा या ओम् के ही दर्शन करती रहती है। आत्मा के प्रदेशों में उसे सम्यक्त्व-सम्यक्त्वकी ही लहरें दिखाई देती हैं और वे लहरें पवित्र पवित्रतम जैसे जल की चमकती हुई; उनमें रंचमात्र भी कोई विकार नहीं। उन पवित्रतम लहरों में उसे अपनी आत्मा का दर्शन ठीक परमात्मा के जैसा होता है, जिससे उसकी यह तलाश समाप्त हो जाती है कि भगवान का दर्शन कहां मिलेगा! ठीक ही है, जिसे अपने आपमें ही मिल गया, उसे फिर बाहर में तलाश क्यों ?

वेदका अग्रस्थिरश्चैव, वेदतं निरग्रंथं ध्रुवं।
त्रैलोक्यं समयं शुद्धं, वेद वेदंति पंडितः ॥२१॥

जो पंडित कहलाता है या, होता जो वेदान्त-प्रवीण।
अग्र ज्ञान को कर उसमें वह, सतत रहा करता तल्लीन॥
तीन लोक का ज्ञायक है जो, ग्रन्थहीन, ध्रुव अविनाशी।
उसी आत्म का अनुभव करता, नितप्रति ज्ञान-नगर-वासी॥

ज्ञान नगर निवासी पंडित अपने हृदय मन्दिर की वेदी में विराजमान निग्रन्थ, ध्रुव, वीतराग स्वभावी अपनी आत्मा को जो कि पंचज्ञान का निधान है उसे ही वीतराग सर्वज्ञ की समकक्ष अपनी निश्चय दृष्टि में अवलोकन करता है, वेद का जो अग्र-सार उसे भी वह उसी में पाता है, अतः एकमात्र उसकी तन्मयता ही उसे प्रिय लगती है।

उच्चारण ऊर्ध शुद्धं च, शुद्ध तत्वं च भावना ।
पंडितो पूज आराध्यं, जिन समयं च पूजतं ॥२२॥

ऊर्ध्व-प्रणायक प्रणव मंत्र का, करना मुख से उच्चारण ।
अपने विमल हृदय-मन्दिर में, करना शुद्ध भाव धारण ॥
यही एक पंडित-पूजा है, पूज्यनीय शिव सुखदाई ।
आत्मा का पूजन ही, है जिन-पूजन हे भाई ॥

अपने मुख से बार बार 'ओम्' का उच्चारण करना और सदैव शुद्धात्मा की भावनाओं में लीन होना यही वास्तव में एकमात्र पंडितपूजा (पंडितों के करने योग्य पूजा) होती है, और इसी तरह की ज्ञान-पूजा ही वास्तव में वह पूजा होती है जिसको शास्त्रों में देवपूजा या जिनपूजा कही गई है। हे पंडित जनो ! ऐसी ही ज्ञान-पूजा या आत्म-पूजा करो, ऐसी ही भक्ति और आराधना करो, यह पूजा चारों संघ को उपयोगी है ।

पूजतं च जिनं उक्तं, पंडितो पूजतो सदा ।
पूजतं शुद्ध साधं च, मुक्ति गमनं च कारणं ॥२३॥

आत्मद्रव्य की पूजा करता, बन जो जिन-वच-अनुगामी ।
वही एक जग में करता है, पंडितपूजा शिवगामी ॥
शुद्ध आत्मा ही भव-जल से, तरने का बस है साधन ।
मुक्ति चाहते हो यदि तुम तो, करो इसी का आराधन ॥

श्री जिनेन्द्र के वचनों का अनुयायी बनकर जो आत्म-द्रव्य की, अत्म-गुणों की पूजा करता है, वही वास्तव मे एकमात्र पंडित-पूजा है, जबकि दूसरी पूजायें पुण्य तथा पाप बंध करके संसार में ही भटकाया करती हैं। जब कि यह आत्म-पूजा या आत्म-अर्चना ज्ञानी को, विवेकवान पूजक को नियम से भवसागर से पार उतारकर मुक्ति-नगर में पहुँचा देती है ।

अदेवं अज्ञान मूढं च, अगुरुं अपूज्य पूजनं ।
मिथ्यात्वं सकल जानंते, पूजा संसार भाजनं ॥२४॥

'देव' किन्तु देवत्वहीन जो, वे 'अदेव' कहलाते हैं ।
वही 'अगुरु' जड़, जो गुरु बनकर, झूठा जाल बिछाते हैं ॥
ऐसे इन 'अदेव' 'अगुरों' की, पूजा है मिथ्यात्व महान् ।
जो इनकी पूजा करते वे, भव भव में फिरते अज्ञान ॥

ज्ञान-चेतना रहित और देवत्वपने से सर्वथा हीन ऐसे स्वनिर्मित अदेवों को देव मानकर पूजना तथा गुरु के समान वेष बना लेने पर भी गुरु के गुणों से कोसों दूर रहते हैं ऐसे कुगुरु या अगुरुओं को गुरु के समान मानना, पूजना केवल मिथ्यात्व ही होता है । ऐसे अदेवों और अगुरुओं की पूजा पूजक का मंगल तो नहीं करती, हाँ उन्हें संसार सागर में बार बार भटकाया ही करती है, अनन्तकाल पर्यन्त दुःखों का ही भोग कराती है ।

तेनाह पूज शुद्धं च, शुद्ध तत्व प्रकाशकं ।
पंडितो वंदना पूजा, मुक्तिगमनं न संशयः ॥२५॥

सप्त तत्व के पुंजों का नित, करता है जो प्रतिपादन ।
वही ब्रह्म है पूज्य, विज्ञगण ! करो उसी का आराधन ॥
अगुरु, अदेवादिक की पूजा, आवागमन बढ़ाती है ।
आत्म-अर्चना, आत्म-वंदना, मुक्ति-नगर पहुँचाती है ॥

जो सप्त तत्वों के पुंजों का नित्यप्रति प्रतिपादन करता है, उन्हें प्रकाश में लाता है, हे विज्ञजन ! तुम उसी शुद्धात्मा का आराधन करो । अगुरु, अदेवों की पूजा केवल संसार को ही बढ़ाती है, किन्तु आत्म-अर्चना और आत्म-वन्दना इस संसार सागर को सुखाकर मोक्ष नगर के मार्ग को स्पष्ट कर देती है ।

प्रति इन्द्र प्रति पूर्णस्य, शुद्धात्मा शुद्ध भावना ।
शुद्धार्थं शुद्ध समयं च, प्रति इन्द्रं शुद्ध दृष्टितं ॥२६॥

इन्द्र कौन ? निज चेतन ही तो, सत्य इन्द्र भव्यो स्वयमेव ।
वही एक है शुद्ध भावना, वही परम देवों का देव ॥
वही ब्रह्म, शुचि शुद्ध अर्थ है, वही समय निर्मल, पावन ।
उसी शुद्ध चिद्रूप देव का, करो चिंतवन मनभावन ॥

भगवान की पूजा इन्द्रों ने की थी अथवा नहीं की थी यह तो भगवान ही जानें, किन्तु तुम्हारी शुद्धात्मा का स्वरूप भी परमब्रह्म परमेश्वर के समान है व ज्ञानघन की ठौर है, ऐसे चिद्रूप देव शुद्धात्मा का जिसका कि दूसरा नाम इन्द्र है उस अपने इन्द्रस्वरूप आत्मा की तुम स्वयं इन्द्र के समान अत्यन्त उल्लास के साथ पूजन करो, क्योंकि यही पूजा तुम्हारा मंगल करने की क्षमता रखती है, दूसरी नहीं ।

दाताऽरु दान शुद्धं च, पूजा आचरण संयुतं ।
शुद्धसम्यक्त्वहृदयं यस्य, स्थिरं शुद्ध भावना ॥२७॥

जिस जन के हृदयस्थल में है, सम्यग्दर्शन रत्न महान ।
अपने ही में आप लीन जो, जिसे न सपने में पर ध्यान ॥
आत्म द्रव्य का पूजन करता, कर जो नव आदर सत्कार ।
परमब्रह्म को वही ज्ञान का, देता महा दानदातार ॥

जिसके हृदय में सम्यक्त्व रत्न जगमगा रहा है और जो अपने आप में लीन रहने में ही सारे सुखों का अनुभव करता है वह जब आत्म द्रव्य का पूजन करता है तो उसकी यह पूजा एक पवित्रतम दान का रूप धारण कर लेती है और विद्वान इस पूजा को एक ज्ञानी के द्वारा आत्मा को ज्ञान का दान दिया जाना ही कह कर के पुकारते हैं । इस ज्ञान दान में चारों ही दान का समावेश मंथन करने पर तुम्हें मालूम होगा । क्योंकि आत्म-पूजन से आत्मा में ज्ञान की वृद्धि; निर्भयता की जाग्रति, अपने आप में स्थिरता, तथा आनन्दामृत का भोजन पान, इस तरह के यह चारों दान व्यवहार दान की अपेक्षा बहु-मूल्य व मंगलदायक होंगे ।

शुद्ध दृष्टी च दृष्टंते, सार्धं ज्ञानमयं ध्रुवं।
शुद्धतत्वं च आराध्यं, बंदना पूजा विधीयते ॥२८॥

चिदानंद के ज्ञान-गुणों के, अनुभव में होना तल्लीन।
यही एक वन्दन है सच्चा, नहीं वन्दना और प्रवीण॥
शुद्ध आत्म का निर्मल मन से, करना सच्चा आराधन।
यही एक बस पूजा सच्ची, यही सत्य बस अभिवादन॥

चिदानंद शुद्धात्मा के ज्ञान गुणों में तल्लीनता होना यही एक सच्ची वन्दना है और यही एक सच्ची पूजा। क्योंकि शुद्धात्मा का सच्चे मन से आराधन करना पंडितों ने इसे ही वास्तव में वन्दना या पूजा कही है, अथवा जिनवाणी में ऐसी वन्दना या पूजा कही है अथवा जिनवाणी में ऐसी वन्दना पूजा करने वाले को ही पंडित कहा है।

"पंडितों द्वारा की जाने वाली पंडित पूजा" केवल इसी आधार से इसका नाम 'पंडित पूजा' श्री तारन स्वामी ने रखा है।

संघस्य चत्रु संघस्य, भावना शुद्धात्मनां।
समयसारस्य शुद्धस्य, जिनोक्तं सार्धं ध्रुवं ॥२९॥

मुनी, आर्यिका श्रावक दम्पति, भी क्यों करें इतर चर्चा ?
निजानन्द-रत होकर वे भी, करें आत्म की ही अर्चा॥
शुद्ध आत्मा ही बस जग में, सारभूत है हे भाई !
जिन प्रभु कहते, आत्मध्यान ही, एक मात्र है सुखदाई॥

मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका, याने चतुर्विध संघ का यही कर्तव्य है कि ये इसी शुद्धात्मा की भावनाओं को भा कर उसके ही गुणों की आराधना करें। ऐसा करने में ही सबका कल्याण होगा।

श्री जिनेन्द्र का कथन है कि—संसार में आत्मा ही केवल एक सारभूत है और प्राणीमात्र का कल्याण करने वाली एकमात्र आत्मा की आराधना व पूजा करना है।

सार्धं च सप्ततत्वानं, दर्वकाया पदार्थकं ।
चेतनाशुद्ध ध्रुवं निश्चय, उक्तं च केवलं जिनं ॥३०॥

सप्त तत्व को देखो चाहे, छह द्रव्यों का छानों कुंज ।
नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय का, चाहे सतत बिखेरो पुंज ॥
इन सब में पर जीव-तत्व ही, सार पाओगे विज्ञानी ।
आत्मतत्व ही सारभूत है, कहती यह ही जिनवाणी ॥

चाहे तुम सात तत्त्वों के पुञ्ज को देखो, और चाहे छह द्रव्यों की राशि को बिखोरो अथवा पंचास्तिकाय और नौ पदार्थों को। इन सबमें तुम्हें सारभूत पदार्थ केवल एक आत्मा ही मिलेगा। श्री जिनवाणी का भी यही कथन है कि हे भव्यो ! जो चेतना लक्षण से मंडित ध्रुव और शाश्वत आत्मा है, वास्तव में वही इस जगत में केवल एक सारभूत है, तीर्थस्वरूप कल्याणदायिनी है।

मिथ्या तिक्त त्रितियं च, कुज्ञान त्रिति तिक्तयं ।
शुद्धभाव शुद्ध समयं च, सार्धं भव्य लोकयः ॥३१॥

दर्शन मोह तीन हैं भव्यो, छोड़ो उनसे अपना नेह ।
कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, कुज्ञानों, से भी हीन करो हिय-गेह ॥
निर्मल भावों से तुम निशिदिन, धरो आत्म का निश्चल ध्यान ।
आत्म-ध्यान ही भव-सागर के, तरने को है पोत महान ॥

तीन प्रकार के मिथ्यात्वों को छोड़कर जो तीन प्रकार के कुज्ञान हैं, हे भव्यो ! तुम उनसे भी अपना नाता तोड़ दो। तुम्हारा कल्याण इसी में है कि तुम निर्मल भावों से केवल अपनी शुद्धात्मा का ही ध्यान करो। क्योंकि तुम्हारी आत्म-नौका ही तुम्हें पार लगायेगी, किसी दूसरे चेतन व अचेतन पदार्थ में यह शक्ति नहीं जो तुम्हें संसार समुद्र से पार कर दे।

एतत् सम्यक्त्वपूज्यस्य, पूजा पूज्य समाचरेत् ।
मुक्तिश्रियं पथं शुद्धं, व्यवहारनिश्चयशाश्वतं ॥३२॥

निर्मल कर मन वचन काय की, तीर्थ-स्वरूपिणि वैतरणी ।
करो आत्म की पूजा विज्ञो, यही एक भव-जल-तरणी ॥
शुद्ध आतमा का पूजन ही, पूजनीय है सुखदाई ।
युगल नयों से सिद्ध यही है, यही एक शिव-पथ भाई ॥

अपने मन, वचन, काय की=त्रियोग-त्रिवेणी पवित्र कर, हे विज्ञो ! तुम्हें उचित है कि तुम अपने शुद्धात्मा की ही निशिदिन पूजा करो, क्योंकि व्यवहार और निश्चय दोनों ही नय इस बात को एक स्वर से पुकार पुकार कर कहते हैं कि यदि संसार में मोक्ष ले जाना कोई पंथ है तो वह केवल अपनी ही आत्मा का पूजन, अपनी ही आत्मा का मनन और अपनी ही आत्मा का मननपूर्वक अर्चन करना है ।

श्री तारन स्वामी कहते हैं कि हे भव्यो ! उपरोक्त सम्यक्त पूजा करो और तदनुसार ही आचरण करो। यही व्यवहार तथा निश्चय इन दोनों नयों से मुक्ति-पंथ का शुद्ध शाश्वत मार्ग है। ध्यान रहे, तदनुसार आचरण के बिना मात्र पूजा केवल पूजा का आडम्बर है ।

❁

सम्यक्त्व-माहात्म्य

सम्यक्त्वहीन जीव यदि पुण्य सहित भी हो तो भी ज्ञानीजन उसे पापी कहते हैं। क्योंकि पुण्य-पाप रहित स्वरूप की प्रतीति न होने से पुण्य के फल की मिठास में पुण्य का व्यय करके, स्वरूप की प्रतीति रहित होने से पाप में जायगा।

सम्यक्त्व सहित नरकवास भी भला है और सम्यक्त्वहीन होकर देवलोक का निवास भी शोभास्पद नहीं होता।

संसार रूपी अपार समुद्र से रत्नत्रय रूपी जहाज को पार करने के लिये सम्यग्दर्शन चतुर खेवटिया (नाविक) के समान है।

जिस जीव के सम्यग्दर्शन है वह अनंत सुख पाता है और जिस जीव के सम्यग्दर्शन नहीं है वह यदि पुण्य करे तो भी अनंत दुःखों को भोगता है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शन की अनेकविध महिमा है, इसलिये जो अनंत सुख चाहते हैं उन समस्त जीवों को उसे प्राप्त करने का सर्व प्रथम उपाय सम्यग्दर्शन ही है।

श्री तारणस्वामी—

तारण-वाणी

●

द्वितीय धारा (मालारोहण)

卐

ॐकार वेदंति शुद्धात्म तत्वं, प्रणमामि नित्यं तत्वार्थ सार्थं ।
ज्ञानं मयं सम्यकदर्शनोत्थं, सम्यक्त्वचरणं चैतन्यरूपं ॥१॥

ओङ्कार रूपी वेदान्त ही है, रे तत्व निर्मल शुद्धात्मा का ।
ओङ्कार रत्नत्रय की मंजूषा, ओङ्कार ही द्वार परमात्मा का ॥
ओङ्कार ही सार तत्वार्थ का है, ओङ्कार चैतन्य प्रतिमाभिराम ।
ओङ्कार में विश्व, ओङ्कार जग में, ओङ्कार को नित्य मेरा प्रणाम ॥

विश्व के श्रेष्ठतम अनुभव एक स्वर से कह रहे हैं कि यदि शुद्धात्मा का अनुभव किया जाये तो उसमें एक ही सारभूत पदार्थ दृष्टिगोचर होगा और वह पदार्थ होगा ॐ या ओंकार का रहस्यसे पूर्ण पद।

ओंकार—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का निधान है; मोक्ष का एक मार्ग है और चेतन के वास्तविक रूप की यदि कोई प्रतिमूर्ति है तो वह भी ओंकार ही है।

संसार के समस्त पदार्थ व तत्त्वों में अग्रगण्य उस ओंकार पद को मैं मस्तक झुकाकर अभिवादन करता हूँ।

मालारोहण ग्रन्थ की इस प्रथम गाथा में जिस ओंकार का अभिवादन श्री तारण स्वामी ने किया है उस ही ओंकार के गुणों का वर्णन इस ग्रन्थ की ३२ गाथाओं में करके शिष्य समूह को यह उपदेश दिया है कि भो भव्य जीवो! तुम भी ओंकार के उन गुणों को जो कि सिद्धों में प्रत्यक्ष और तुम्हारी आत्मा में प्रच्छन्न रूप से विद्यमान हैं प्रगट करो, आरोहण करो अर्थात् ओंकारस्वरूप अपनी आत्मा के गुणरूपी माला को कंठ में पहिनो, धारण करो, जिस आत्म-गुणमाला को पहिन कर अनन्त जीवों ने सिद्धपद प्राप्त किया है।

नमामि भक्तं श्रीवीरनाथं, नंतं चतुष्टं तं व्यक्त रूवं ।
मालागुणं बोच्छं तत्वप्रबोधं, नमाम्यहं केवलि नंत सिद्धं ॥२॥

जोऽनंत चतुष्टय के निकेतन, जिनके न ढिंग अष्ट कर्मारि बसते ।
ऐसे जिनेश्वर श्री वीर प्रभु को, मेरा युगल पाणि से हो नमस्ते ॥
मैं केवली, सिद्ध, परमेष्ठियों को, भी भक्ति से आज मस्तक नवाता ।
जो सप्त तत्वों की है प्रकाशक, उस मालिका के गुण आज गाता ॥

अनंत दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनंत वीर्य के धारी तथा शुद्धात्मा के सर्वोत्तम प्रतीक, भगवान महावीर को भी मैं नमस्कार करता हूँ, तथा कर्मों की बेड़ियों को काटकर आज तक जितने भी जीव स्वाधीन होकर मुक्ति नगर को पहुँच चुके हैं उनके चरणों में भी नत मस्तक होकर हे श्रावको ! मैं तुम्हारे सामने कल्याण के लिये उस माला की या शुद्धात्मा की चर्चा करता हूँ, जो मर्मज्ञ संसार के बीच अध्यात्म या समकित माल के नाम से प्रसिद्ध है ।

★

कायाप्रमाणं त्वं ब्रह्मरूपं, निरंजनं चेतनलक्षणत्वं ।
भावे अनेत्वं जे ज्ञानरूपं, ते शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व वीर्यं ॥३॥

इस ब्रह्मरूपी निज आत्मा का, काया बराबर स्वच्छंद तन है ।
मल से विनिर्मुक्त है यह घनानंद, चैतन्य-संयुक्त तारनतरन है ॥
जो इस निरंजन शुद्धात्मा के, शंकादि तजकर बनते पुजारी ।
वे ही सफल हैं निज आत्मबल में, वे ही सुजन हैं सम्यक्त्वधारी ॥

आत्मा जिस शरीर में निवास करती है उसी प्रमाण अपना रूप धारण कर लेती है, किन्तु नश्वर के साथ अनश्वर का यह मेल अनेक भेदों से भरा हुआ है । काया जहाँ अंधकार से परिपूर्ण है वहाँ आत्मा निरंजन-प्रकाशमय है, अंधकार का उस पर कोई पर्दा नहीं, जहाँ काया अचेतन है, वहाँ आत्मा में चेतना का अविनाभावी संबंध है ।

जो ज्ञानी पुरुष इस आत्मा के शंकादि छोड़कर निश्चल पुजारी बन जाते हैं, वे ही वास्तव में अपने आत्मबल में सफल होते हैं और वे ही इस संसार में 'सम्यग्दृष्टि' नाम की संज्ञा प्राप्त करते हैं ।

संसार दुक्खं जे नर विरक्तं, ते समय शुद्धं जिन उक्त दृष्टं।
मिथ्यात्व मद मोह रागादि खंडं, ते शुद्ध दृष्टी तत्वार्थ सार्धं ॥४॥

श्री जैन वाणी में मुख कमल से, कहते गिरा सिद्ध परमात्मा हैं ।
संसार-दुःखों से जो परे हैं, भव्यो वही जीव शुद्धात्मा हैं ॥
मिथ्यात्व, मद, मोह, रागादिकों-से, जिनने किये हैं रिपु नाश भारी ।
वे ही सुजन हैं तत्वार्थ ज्ञाता, वे ही पुरुष हैं सम्यक्त्वधारी ॥

जिन्हें आत्मा की पहिचान हो जाती है, उनके पास दुःख नाम की कोई वस्तु नहीं रह जाती, अतः इस संसार में शुद्धात्मा या महात्मा केवल वही पुरुष हैं जो संसार के दुःखों से परे हो चुके हैं— जो यह नहीं जानते कि आत्मा को कलुषित करने वाला दुःख आखिर किस पदार्थ का नाम है, ऐसे महात्मा न तो फिर संसार के मिथ्या विश्वासों में फँसते हैं और न राग द्वेष या ममता मोह के जाल में ही। संसार में जो आठ प्रकार के मद कहे जाते हैं, उनको तो वे खंड खंड ही कर डालते हैं। विश्व की कल्याण करने वाली, करुणामयी जिनवाणी ऐसे ही महात्माओं को शुद्ध सम्यग्दृष्टी के नाम से पुकारती है, संबोधन करती है।

शल्यं त्रियं चित्त निरोधनेत्वं, जिन उक्त वाणी हृदि चेतनेत्वं।
मिथ्याति देवं गुरु धर्मदूरं, शुद्धं स्वरूपं तत्वार्थ सार्धं ॥५॥

श्री वीर प्रभु के अमृत-वचन का, जिनके हृदय में जलता दिया है ।
मिथ्यादि त्रय शल्य का रोग जिनने, सम्यक्त्व-उपचार से क्षय किया है ॥
मिथ्यात्व-मय देव गुरु धर्म से जो, रहते सदा हैं परे आत्म-ध्यानी ।
वे ही पुरुष हैं शुद्धात्म-प्रतिमूर्ति, सम्यक्त्वधारी तत्वार्थ-ज्ञानी ॥

मिथ्या, माया, निदान इन तीन शल्यों से जिनके हृदय रहित हो जाते हैं, भगवान के वचन जिनके मन-मन्दिर में नितप्रति गूँजते हैं और जो खोटे मार्ग पर ले जाने वाले देव, गुरु और धर्म से दूर और कोसों दूर रहा करते हैं, वे ही पुरुष वास्तव में शुद्धात्मा के प्रतीक होते हैं और उनमें ही वास्तव में तत्त्वार्थ का यथार्थ सार भरा हुआ होता है।

जे मुक्ति सुक्खं नर कोपि सार्धं, सम्यक्त्व शुद्धं ते नर धरेत्वं ।
रागादयो पुन्य पापाय दूरं, ममात्मा स्वभावं ध्रुव शुद्ध दृष्टं ॥६॥

मैं सिद्ध हूँ, मुक्तिरमणी विहारी, है मोक्ष मेरी यही चारु काया ।
मद मोह मल पुण्य रागादिकों की, पड़ती न मुझ पर कभी भूल छाया ।
सम्यक्त्व से पूर्ण जिनके हृदय हैं, जो चाहते मोक्ष किस रोज पावें ।
वे स्वावलम्बी इसी भांति अपने, हृदयस्थ परमात्मा को रिझावें ॥

संसार बन्धनों को काटकर, जो मुक्ति के अनन्त सुख को पाने के अभिलाषी हैं, जिनके हृदय-सरोवर में सम्यक्त्व पल पल शीतल हिलोरें लिया करता है, उन्हें अपनी आत्मा को पहिचानने में तनिक भी समय नहीं लगता। वे जानते हैं कि मैं ध्रुव हूँ, शाश्वत हूँ और शुद्ध दृष्टा अनन्त ज्ञान का धारी हूँ, वह अलौकिक आत्मा हूँ जो तीन लोक को प्रकाशित करती है। और हूँ प्रकाश का वह पुंज जो सदैव अबाध गति से एक समान चमकता रहता है। राग, द्वेष, पुण्य पाप इन विकारों की कोई छाया उनकी आत्मा पर नहीं पड़ती।

ऐसे सम्यग्दृष्टी जीव अपनी आत्मा का चिंतवन ठीक इसी तरह से करते रहते हैं। उनका ऐसा आत्मचिंतन ही उनकी आत्मा को परमात्मा बना देता है।

श्री केवलंज्ञान विलोकतत्वं, शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्म तत्वं ।
सम्यक्त्व ज्ञानं चर नंत सौख्यं, तत्वार्थ सार्धं त्वं दर्शनेत्वं ॥७॥

ज्ञानारसी में जिस तत्व का रे ! दिखता सतत है प्रतिबिम्ब प्यारा ।
जिसके बदन से प्रतिपल बिखरता, रहता प्रभा-पुंज शुचि शुद्ध न्यारा ॥
सम्यक्त्व की पूर्ण प्रतिमूर्ति है जो, है जो अनूपम आनन्द-राशी ।
तत्वार्थ के सार उस आत्मा को, देखो, विलोको, मोक्षाभिलाषी ॥

केवलज्ञान में जिस तत्व की स्पष्ट छाया दृष्टिगोचर होती है; जिसके कण-कण से प्रकाश के सैकड़ों पुंज एक साथ प्रस्फुटित होते रहते हैं तथा जो सम्यक्त्व की पूर्ण प्रतिमूर्ति है ऐसा शुद्धात्म तत्त्व ही वास्तव में सदैव मनन करने योग्य है।

सम्यक्त्व शुद्धं हृदयं समस्तं, तस्य गुणमाला गुथतस्य वीर्यं ।
देवाधिदेवं गुरु ग्रन्थ मुक्तं, धर्मं अहिंसा क्षमा उत्तमध्यं ॥८॥

सम्यक्त्व की चारु चन्द्रावली से, सबके हृदय-हार हैं जगमगाते ।
पुण्यात्मा, वीरवर जीव ही पर, उसके गुणों को कर व्यक्त पाते ॥
जिनराज ही देव हैं ज्ञानियों के, गुरु ग्रंथ-निर्मुक्त, कल्याणकारी ।
है धर्म परमोच्च उत्तम अहिंसा, जिसमें विहँसती क्षमा शक्तिधारी ॥

सम्यग्दृष्टि पुरुष का हृदय सम्यक्त से छलछलाता रहता है। ठीक यही हाल हम सब का भी है, क्योंकि निश्चय नय से हम भी तो सब शुद्ध आत्माएँ ही हैं, पर यह सम्यक्त्व सबके पास होते हुये भी सब अपने आपमें विशुद्ध दृष्टि से देखने में, पूर्ण होते हुए भी केवल कुछ ही आत्माएँ ऐसी होती हैं जो अपने इस सम्यक्त्व को अपनी पूर्णता को ऊपर लाने में समर्थ हो पाती हैं और इस तरह अपने आत्म-बल का दिग्दर्शन कराती हैं। अष्ट कर्मों पर जय पाने वाले अरहंत महाप्रभु और बाईस परीषह सहन करने वाले निर्ग्रंथ साधु इस पौरुष के ज्वलन्त उदाहरण हैं। संसार की सारी शक्तियों के स्वामी होते हुए भी अहिंसा उनका धर्म है और क्षमा है उनका आभूषण।

तत्वार्थ सार्धं त्वं दर्शनेत्वं, मलं विमुक्तं सम्यक्त्व शुद्धं ।
ज्ञानं गुणं चरणस्य सुद्धस्य वीर्यं, नमामि नित्यं शुद्धात्म तत्वं ॥९॥

तत्वार्थ के सार को तुम विलोको, जो शुद्ध सम्यक्त्व का बन्धु! प्याला ।
परिपूर्ण जो शुद्धतम ज्ञान से है, जो है अतुल शक्ति चारित्र वाला ।
यह सार प्यारा शुद्धात्मा है, चिर सुखसदन का अनुपम सु साधन ।
ऐसे अमोलक विज्ञानघन को, मैं नित्य करता सहस्राभिवादन ॥

जीव, अजीवादि सातों तत्त्वों के निष्कर्ष पर यदि हम विचार करें तो पता लगेगा कि जीव तत्त्व ही इन सब में अपनी प्रधानता रखता है। जीव तत्त्व, कर्मों से विमुक्त और अतुल ज्ञान गुण तथा शक्ति का भण्डार है। सम्यक्त्व के इस पुंज को मैं नमस्कार करता हूँ जो कि अपने ही प्रकाश से अपने आपके आनन्द में तन्मय है।

जे सप्त तत्वं षट दर्व युक्तं, पदार्थ काया गुण चेतनेत्वं ।
विश्वं प्रकाशं तत्वान वेदं, श्रुतदेव देवं शुद्धात्म तत्वं ॥१०॥

जो सप्त तत्वों को व्यक्त करता, षट द्रव्य जिसको हस्तामलक हैं ।
पंचास्तिकाया औ नौ पदारथ, जिसमें निरन्तर देते झलक हैं ॥
चैतन्यता से है जो विभूषित, त्रिभुवन-तली को जो जगमगाता ।
श्रुत-ज्ञान रूपी उस आत्म में ही, रत रह, करो आत्म-कल्याण भ्राता ॥

जो सप्त तत्त्वों को व्यक्त करता है षट् द्रव्यों से जो युक्त है, पंचास्तिकाय और नौ पदार्थ जिसमें निरन्तर अपनी झलक दिखाते रहते हैं, ऐसे विश्व को प्रकाशित करने वाले उस विज्ञान रूपी देवाधिदेव शुद्धात्म तत्त्व का तुम निरंतर ही आराधन करो, मनन व चिन्तवन करो ।

देवं गुरुं शास्त्र गुणान नेत्वं, सिद्धं गुणं सोलाकारणेत्वं ।
धर्मं गुणं दर्शन ज्ञान चरणं, मालाय गुथतं गुणमत्स्वरूपं ॥११॥

सत् देव सत् शास्त्र सत् साधुजन में, श्रद्धा करो नित्य सम्यक्त्वधारी ।
मुक्तिस्थ सिद्धों का नित मनन कर, ध्यावो परम भावनायें सुखारी ॥
शुचि, शुद्ध रत्नत्रय-मालिका से, अपने अमोलक हृदय को सजाओ ।
शिव पंथ जिन धर्म को ही समझकर, उसके निरन्तर, सतत गीत गाओ ॥

हे भव्यो ! परम हितोपदेशी, वीतराग, सर्वज्ञ देव में, निर्ग्रंथ गुरु में, तथा कल्याणकारी शास्त्रों में अपनी निष्ठा स्थिर करो, सिद्धों के गुणों का चिंतवन करो तथा अपनी अध्यात्म-मालिका में सम्यक्त्व रत्न को पिरोकर-जोड़कर, उसकी सौरभ चन्द्रमा की कलाओं के समान दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ाओ कि जिस बढ़ते हुये प्रकाश में दश धर्म, सम्यक्त्व के आठ अंग तथा दर्शन, ज्ञान और चारित्र स्वरूप रत्नत्रय आदि अनेक गुण प्रगट हो जावें, जो गुण कहीं बाहर नहीं, तुम्हारे में ही विद्यमान हैं ।

पड़माय ग्यारा तत्वान पेषं, वृत्तानि शीलं तप दान चित्तं ।
सम्यक्त्व शुद्धं न्यानं चरित्रं, सुदर्शनं शुद्ध मलं विमुक्तं ॥१२॥

एकादश स्थान में आचरण कर, कर्मारि पर जय करो प्राप्त भारी ।
पंचाणुव्रत पाल भव भव सुधारो, एकाग्र हो तप तपो तापहारी ॥
दो दान सत्पात्र-दल को चतुर्भांति, निज आत्म की ज्योति को जगमगाओ ।
पावन करो शील-सुर-वारि से गेह, सम्यक्त्व-निधि प्राप्त कर मोक्ष पाओ ॥

भव्यो ! तुम्हारा क्रमशः आत्मिक विकास हो, केवल इसके लिये ही ग्यारह प्रतिमाओं (ग्यारह प्रतिज्ञाओं) की सृष्टि हुई है । अतः तुम अपनी शक्ति के अनुसार क्रमशः एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर चढ़ते चले जाओ । पंचाणुव्रतों का यथाशक्ति पालन करो और शील, तप व दान में अधिक से अधिक अपनी शक्ति को लगाकर प्रयास यह करो कि तुम्हारा सम्यक्त्व पूर्ण निर्मलता को प्राप्त हो जावे । 'सम्यक्त्व का प्रादुर्भाव होने पर ही पहली दर्शनप्रतिमा कही गई है' तथा उसकी क्रमबद्ध निर्मलता ही प्रतिमाओं की विशेषता है ।

मूलं गुणं पालंत जीव शुद्धं, शुद्धं मयं निर्मल धारणेत्वं ।
ज्ञानं मयं शुद्ध धरंति चित्तं, ते शुद्ध दृष्टी शुद्धात्मतत्वं ॥१३॥

वसु मूलगुण को पालन किये से, रे ! जीव होता है शुद्ध, सुन्दर ।
पुण्यार्थियों को इससे उचित है, धारण करें वे यह व्रत-पुरन्दर ॥
जो ज्ञानसागर इस आचरण से, यह देव-दुर्लभ जीवन सजाते ।
वे वीर नर ही हैं शुद्ध दृष्टी, शुद्धात्म के तत्व वे ही कहाते ॥

सम्यक्त्व के अष्टमूल गुणों को पालन करने से अपना यह देह दुर्लभ जीवन शोभायमान हो जाता है, आत्मा के प्रदेशों से बंधे हुये कर्म कटने लगते हैं और उनकी अपनी आत्मा दिन प्रतिदिन शुद्धता की ओर अग्रसर होती चली जाती है, ऐसा इस सम्यक्त्व का माहात्म्य जानकर जो भव्यजीव अष्टमूल गुणों का पालन करते हैं मानों वे ही पुरुष शुद्ध सम्यक्त्व के पात्र हैं अथवा पात्र होने के वे ही जीव अधिकारी हैं ।

शंकाद्य दोषं मद मान मुक्तं, मूढं त्रियं मिथ्या माया न दृष्टं ।
अनाय षट्कर्म मल पंचवीसं, त्यक्तस्य ज्ञानी मल कर्ममुक्तं ॥१४॥

शंकादि वसु दोष, मानादि मद को, जिसके हृदय में कुछ थल नहीं है ।
त्रय मूढ़ता, षट आनायतन की, जिस पर न पड़ती छाया कहीं है ॥
उपरोक्त पच्चीस मल-वैरियों पर, जिसने विजय प्राप्त की भव्य भारी ।
वह कर्म के पाश से छूटता है, बनता वही मुक्ति-रमणी-विहारी ॥

जिसके अपने जीवन में सम्यग्दर्शन के शंकादि ८ दोष, जाति कुल आदि के ८ मद, तीन मूढ़ता तथा अज्ञान पूर्वक किए हुए ६ कर्म, ऐसे ये पच्चीस दोष नहीं हैं, वह ज्ञानी पुरुष शीघ्र ही कर्मों की पाश से छूटकर मोक्ष का सीधा मार्ग पकड़ लेता है और एक दिन समस्त कर्मों से मुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, आत्मा को परमात्मा बना लेता है ।

शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्मतत्त्वं, समस्त संकल्प विकल्प मुक्तं ।
रत्नत्रयालंकृत सत्स्वरूपं, तत्वार्थसार्धं बहुभक्तियुक्तं ॥१५॥

शुद्धात्मा-तत्व का भव्य जीवो, है शुद्ध, सित, सौम्य, निर्मल प्रकाश ।
संकल्प आदिक का क्षोभ उसमें, करता नहीं रंच भी है निवास ॥
शुद्धात्मा का शुद्ध स्वरूप, है रत्नत्रय से सज्जित सुखारी ।
तत्वार्थ का सार भी बस यही है, भव्यो बनो आत्म के तुम पुजारी ॥

जो तत्त्वज्ञानी पुरुष नित्यप्रति शुद्धात्मा के गुणों का चिन्तवन करते रहते हैं तथा उसी तरह के अपने धर्म-आत्म धर्म में लीन बने रहते हैं, संसार के दुखों का उन्हें आभास भी नहीं होता ।

ऐसे विशिष्ट महात्मा पुरुष जीवादि तत्त्वों के ज्ञान में पारंगत होकर अपनी आत्मा में लीन रहने लग जाते हैं, और समय पाकर समस्त संकल्प विकल्पों से छूटकर कर्मों की बेड़ियों को विध्वंस करके उस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं जिसे मुक्तावस्था या परमपद कहते हैं ।

जे धर्म लीना गुण चेतनेत्वं, ते दुःख हीना जिनशुद्धदृष्टी ।
संप्रोय तत्वं सोई ज्ञान रूपं, ब्रजंति मोक्षं क्षणमेक एत्वं ॥१६॥

शुद्धात्मा के चैतन्य गुण में, जो नर निरन्तर लवलीन रहते ।
वे विज्ञ ही हैं, जिन शुद्ध दृष्टी, संसार दुख-धार में वे न बहते ॥
जीवादि तत्वों का ज्ञान करके, होते स्वरूपस्थ वे आत्म-ध्यानी ।
कर्मारि-दल का विध्वंस करके, वरते वही वे शिवा-सी भवानी ॥

जो भव्यजीव अपने आपके आत्म-धर्म में लीन रहते हुए आत्म गुणों का चिंतवन करते हैं वे पुरुष संसार के समस्त दुखों से रहित होकर अन्तरात्मा से परमात्मपद पाने के अधिकारी हो जाते हैं। उनकी शुद्धात्मा से जो प्रकाश प्रगट होता है वह प्रकाश ही उन्हें निर्मल तथा शांत बना देता है। यह प्रकाश तीन रत्नों की जगमगाहट से परिपूर्ण रहता है, अतः ऐसे प्रकाश वाले उस अलौकिक शुद्धात्म तत्व की अर्चना में तुम अपने हृदय की पूर्ण निर्मलता का उपयोग करो, वह तुम्हारी निर्मलता एक क्षण में तुम्हें मुक्ति का दर्शन करा देगी और समय पाकर मुक्तिस्थान में पहुँचा देगी ।

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व शुद्धं, माला गुणं कंठ हृदय अलंकितं ।
तत्वार्थ सार्धं च करोति नेत्वं, संसार मुक्तं शिव सौख्य वीर्यं ॥१७॥

जो शुद्ध दृष्टी शुद्धात्म-प्रेमी, नित पालते हैं सम्यक्त्व पावन ।
अपने हृदयस्थल पर धारते हैं, जो यह गुणों की माला सुहावन ॥
वे भव्य जन ही पाते निरन्तर, तत्वार्थ के सार का चारु प्याला ।
संसार-सागर से पार होकर, पाते वही जीव चिर सौख्य-शाला ॥

जो शुद्ध दृष्टी शुद्धात्म पुरुष सम्यक्त्व का नित प्रति पूर्ण रूप से पालन करते हैं तथा जो अपने कंठ में अध्यात्म मालिका धारण करते हैं वे ही तत्वार्थ की उस माधुरी का पान करने में समर्थ हो पाते हैं और वे ही जीव संसार सागर से पार होकर मुक्तिशाला में जाकर विराजमान होते हैं ।

ज्ञानं गुणं माल सुनिर्मलेत्वं, संक्षेप गुथितं तुव गुण अनन्तं ।
रत्नत्रयालंकृत सस्वरूपं, तत्वार्थ सार्धं कथितं जिनेंद्रैः ॥१८॥

शुद्धात्मा की गुणमालिका में, वाणी अगोचर है पुष्प भाई ।
संक्षेप में ही, पर पुष्प चुन चुन, यह दिव्य माला मैंने बनाई ॥
आगम, पुराणों से तुम सुनोगे, बस एक ही वाक्य परमात्मा का ।
रत्नत्रयाच्छन्न है भव्य जीवो, शशि सा सुलक्षण परमात्मा का ॥

वैसे तो अध्यात्म गुणों की इस मालिका में अर्थात् शुद्धात्मा में अनेकों सुरभियुक्त प्रसून गूंथे हुए हैं, किन्तु उसमें से कुछ ही प्रसूनों (फूलों) को उठाकर उनके गुणों की चर्चा मैंने तुमसे की है । आगम पुराण और संसार के सारे ज्ञान व विज्ञानों से तुम्हें एक ही कथन सुनने को मिलेगा और वह यह कि शुद्धात्मा या अध्यात्म मालिका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की निधान है, उस निधान की-तत्त्वार्थ की तुम श्रद्धा करो, एकमात्र यही जिनेन्द्रदेव का कथन है ।

श्रेनीय पृच्छंति श्री वीरनाथं, मालाश्रियं मागंत नेहचक्रं ।
धरणेन्द्र इन्द्र गन्धर्व जक्षं, नरनाह चक्रं विद्या धरेत्वं ॥१९॥

श्री वीर प्रभु से श्रेणिक नृपति ने, पूछा सभा में मस्तक नवाकर ।
इस मालिका को त्रिभुवन तली पर, किसने विलोका कहो तो गुणागर ?
क्या इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व ने भी, देखी कभी नाथ यह दिव्यमाला ?
या यक्ष, चक्रेश, विद्याधरों ने, पाया कभी नाथ यह मुक्ति-प्याला ?

भगवान महावीर से श्रेणिक नृपति ने उनके समोशरण में एक प्रश्न पूछा—भगवन् ! त्रिभुवन में इस अध्यात्म माला के दर्शन पाने में कौन समर्थ हुआ ? इस अलौकिक गुणों की लक्ष्मी ने किसके गले में जयमाला डाली ?

क्या इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व सरीखी विभूतियों ने कभी इस माला को देखा या कभी यक्ष, चक्रेश या विद्याधरों ने इस माला को आरोहण किया ? हे सम्यक्त्वधाम ! यह आप बतावें ।

किं दिस्स रतनं बहुवे अनन्तं, किं धन अनंतं बहुभेय युक्तं ।
किं त्यक्त राज्यं बनवासलेत्वं, किं तत्व वेत्वं बहुवे अनंतं ॥२०॥

जिसके भवन में हीरे जवाहिर, या द्रव्य की लग रहीं राशि भारी ।
ऐसे कुबेरों ने भी प्रभो क्या, देखी कभी माल यह सौख्यकारी ॥
या राज्य को त्याग जोगी बने जो, उनने विलोकी यह माल स्वामी ।
या सप्त तत्वों के पंडितों ने, देखी गुणावलि यह मोक्षगामी ?

हे भगवन् ! जिसके भवन में हीरे, जवाहर या रत्नों की राशियों के ढेर लगे थे ऐसे कुबेर ने भी क्या कभी इस मालिका के दर्शन किये ? या जो राज्य पाट को त्याग कर योगी बन गये उन्होंने कभी इस मालिका से अपना हृदय सुशोभित किया या कभी इस मालिका को अपने वक्षस्थल पर वे देख पाये जो जंगलों अथवा पर्वतों में जाकर घोर तप करते हैं और जिनका शरीर तपस्या के मारे सूख कर कांटा हो गया है ?

श्री वीरनाथं उक्तं च शुद्धं, श्रुणु श्रेण राजा माला गुणार्थं ।
किं रत्न किं अर्थ किं राजनार्थं, किं तत्व वेत्वं नवि माल दृष्टं ॥२१॥

बोले जिनेश्वर श्री मुख-कमल से, 'श्रेणिक सुनो मालिका की कहानी ।
इस आत्म-गुण की सुमनावली के, दर्शन सहज में न हों प्राप्त ज्ञानी ॥
ना तो कभी रत्नधन-धारियों ने, श्रेणिक सुनो मालिका यह निहारी ।
ना मालिका को उनने विलोका, जो मात्र थे तत्व के ज्ञानधारी ॥

समदर्शी भगवान महावीर बोले—'श्रेणिक ! मैं इस अध्यात्म माला की कहानी तुमसे कहता हूँ, तुम ध्यान पूर्वक सुनो ! सारभूत बात यह है कि यह अध्यात्म मालिका उन साधारण मालाओं सी माला नहीं, श्रेणिक ! जिसके दर्शन सबको ही सहज में प्राप्त हो जावें । न तो हीरे जवाहरात के धनी इसे पा सके, न वे ही इस माला को पहिन सके जो मात्र तत्त्वज्ञाता थे या जो राज्यपाट छोड़कर केवल वेषधारी बनकर जंगलों या पर्वतों में घोर तपस्या को चले गये और तप करते हुये शरीर को सुखा डाला ।

किं रत्न कार्यं बहुविहि अनंतं, किं अर्थ अर्थं नहि कोपि कार्यं ।
किं राज चक्रं किं काम रूपं, किं तत्व वेत्वं विन शुद्ध दृष्टि ॥२२॥

"इस माल के दर्शनों में न तो भूप, रत्नादि पत्थर ही काम आवें।
ना सार्वभौमों के राज्य या धन, ही इस गुणावलि को देख पावें ॥
ना तो इसे देख तत्वज्ञ पाये, ना कामदेवों-से दृग-सुखारी !
दर्शन वही कर सके मालिका का, थे जो सुनो शुद्धतम दृष्टि धारी ॥"

पुनश्च—हे श्रेणिक ! इस माला को प्राप्त करने में न तो रत्नादि पत्थर ही काम आते हैं और न चक्रवर्तियों के राज्य पाट या वैभव ही। तथा कामदेव का तीनों भुवन को मोह लेने वाला रूप भी इस माला को प्राप्त न कर सका। तात्पर्य यह है कि—बिना शुद्ध दृष्टि के ये सब ही इस अध्यात्म माला को पाने में असफल रहे अर्थात् न पा सके।

जे इन्द्र धरणेन्द्र गंधर्व यक्षं, नाना प्रकारं बहुविहि अनंतं ।
तेऽनंत प्रकारं बहु भेय कृत्वं, माला न दृष्टं कथितं जिनेन्द्रैः ॥२३॥

"श्रेणिक ! सुनो वास्तविक गूढ़ यह है, जो पूर्णतम है सम्यक्त्व धारी।
केवल वही पुण्यशाली सुजन ही, नृप ! धर सके मालिका यह सुखारी ॥
जो इंद्र, धरणेन्द्र, गंधर्व, यक्षादि, नाना तरह के तुमने बताये।
वे स्वप्न में भी कभी भूल राजन् ! यह दिव्य माला नहीं देख पाये ॥"

हे श्रेणिक ! इन्द्र इत्यादि संसारी भावनाओं की कामना वाले इस माला के दर्शनों से वंचित रहे, भले ही उन्होंने अनेक भेद प्रभेद पूर्वक आचरण किये, किन्तु अध्यात्म माला और उसके पाने के रहस्य को समझे बिना कोई भी उसे न पा सके। दूसरे शब्दों में तात्पर्य यह कि इस माला का संबंध रत्नादि पत्थरों से, चक्रवर्तियों के राज्य-वैभव से, इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व, यक्षादि की विभूति से या कामदेव के अद्वितीय रूप से न होकर आत्मा के विशिष्ट गुणों से है; इसलिये यह सब इसे प्राप्त न कर सके। श्रेणिक ! यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। इसके रहस्य को समझने में भी तुम भूल न करना।

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व युक्तं, जिन उक्त सत्यं सु तत्वार्थ सार्धं ।
आशा भय लोभ स्नेह त्यक्तं, ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं ॥२४॥

जो स्याद्वादज्ञ, सम्यत्व-सम्पन्न, शुचि, शुद्धदृष्टी, निज आत्मध्यानी ।
तत्वार्थ के सार को जानते नित्य, ध्याते पतित-पावनी जैन वाणी ॥
आशा, भय, स्नेह औ लोभ से जो, बिलकुल अछूते हैं स्वात्मचारी ।
वे ही हृदय कंठ में नित पहिनते, है आत्म-गुणमाल यह सौख्यकारी ॥

हे श्रेणिक ! इस अध्यात्ममाला को केवल वे ही व्यक्ति प्राप्त कर सके जो दर्शन, ज्ञान और आचरण से संयुक्त "शुद्ध दृष्टी" थे, सम्यक्त्व से परिपूर्ण थे। इस मालिका के साथ जो रहस्य है वह यह है कि केवल सम्यक्त्व से परिपूर्ण शुद्ध दृष्टि पुरुष ही इसे प्राप्त करने में समर्थ हो सके हैं।

जिन्हें करुणामयी जिनवाणी के वचनों पर अटूट श्रद्धा होती है, तत्त्वार्थ के सार आत्मा के जो पूर्णरूपेण ज्ञाता होते हैं तथा आशा, भय, लोभ और स्नेह से जिनका हृदय दूर बहुत दूर हो जाता है ऐसे नररत्नों के हृदय ही इस मालिका से सुशोभित होते हैं, हुए हैं, और होवेंगे।

जिनस्य उक्तं जे शुद्ध दृष्टी, सम्यक्त्वधारी बहुगुणसमृद्धिम् ।
ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं, मुक्ती प्रवेशं कथितं जिनेन्द्रैः ॥२५॥

"जिन-उक्त-तत्वों को जानते हैं, जो पूर्ण विधि से सम्यक्त्व धारी ।
आत्म-समाधि सा मिल चुका है, जिनको समुज्ज्वल-तम रत्न भारी ॥
उनके हृदय-कंठ पर ही निरंतर, किल्लोल करतीं ये माल ज्ञानी !
वे ही पुरुष मुक्ति में राज्य करते, कहती जगतपूज्य जिनराज-ज्ञानी ॥"

श्री जिनवाणी ने जिन सिद्धांतों का अपने ग्रन्थों में प्रतिपादन किया है, जो उनको भली भांति अपने जीवन में उतारते हैं; वे सम्यक्त्वनिधि को पाकर त्रैलोक्य के धनी बन जाते हैं। हे श्रेणिक ! सुनो ! ऐसे पुरुष ही इस मालिका को अपने वक्षस्थल पर धारण करने में समर्थ होते हैं और ऐसे ही पुरुष कर्मों के पाश से छूटकर मुक्तिस्थान में पहुँचकर चिरकाल पर्यंत निवास करते हैं।

सम्यक्त्व शुद्धं मिथ्या विरक्तं, लाजं भयं गारव जेवि त्यक्तं ।
ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं, मुक्तस्य गामी जिनदेव कथितं ॥२६॥

"मिथ्यात्व को सर्वथा त्याग कर जो, नर हो चुके हैं सम्यक्त्व धारी ।
जिनके हृदय लाज, भय से रहित हैं, जिनने किये नष्ट मद अष्ट भारी ॥
उनकी हृदय-सेज ही भव्य जीवो ! इस मालिका की क्रीड़ास्थली है ।
जिनदेव कहते उनके रग रग, बस खुली शिवनगर की गली है ॥"

जिनके हृदय में शुद्ध सम्यक्त्व का सरोवर लहरें लिया करता है—संसार की विडंबनाओं से जो पूर्ण मुक्ति पा चुके हैं, तथा लौकिक लाज, भय और मदों से अपना पल्ला छुड़ा चुके हैं, हे श्रेणिक ! सुनो ! पुरुषों में ऐसे ही उत्तम पुरुष इतनी क्षमता रखते हैं कि इस अध्यात्म-माला को अपने वक्षस्थल पर सजा सकें और केवल वही पुरुष ही संसार सागर को पार कर मुक्ति नगर पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त करने में समर्थ हो पाते हैं ।

जे दर्शनं ज्ञान चारित्र शुद्धं, मिथ्यात्व रागादि असत्य त्यक्तं ।
ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलितं, सम्यक्त्व शुद्धं कर्म विमुक्तं ॥२७॥

शुचि, शुद्ध दर्शन, ज्ञानाचरण से, जिनके हृदय में मची है दिवाली ।
मिथ्यात्व, मद, झूठ, रागादि के हेतु, जिनके न उर में कहीं ठौर खाली ॥
उनके हृदय कंठ पर ही निरंतर, ये माल मनहर लटकती रही है ।
वे ही सुजन हैं जिन शुद्ध दृष्टी, रिपु-कर्म से मुक्ति पाते वही हैं ॥

दर्शन, ज्ञान, आचरण और वह भी सम्यक् की संज्ञा को प्राप्त हुआ ऐसे रत्नत्रय के संयोग से जिनका हृदय दीपावली के समान जगमगाया करता है, मिथ्यात्व भाव या खोटे-राग द्वेष को उत्पन्न करने वाले पदार्थों का मोह जिनमें रंचमात्र भी निवास नहीं करता, तथा राग द्वेष परिणतियों और असत्य को जो बिलकुल ही तिलांजलि दे चुके हैं, हे श्रेणिक ! ऐसे ही महात्माओं को यह सौभाग्य प्राप्त होता है कि वे उस अध्यात्म-माला के प्रसाद से अपने को कृत-कृत्य कर सकें ।

पदस्थ पिण्डस्थ रूपस्थ चित्तं, रूपा अतीतं जे ध्यान युक्तं।
आर्त रौद्रं मद मान त्यक्तं, ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं ॥२८॥

पादस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, निर्मूर्त, इन ध्यान-कुंजों के जो विहारी।
मद-मान-से शत्रुओं के गढ़ों पर, जिनने विजय प्राप्त की भव्य भारी॥
जिनके न तो रौद्र ही पास जाता, जिनको न ध्यानार्त की गंध आती।
ऐसे सुजन-पुंगवों के हृदय ही, यह आत्मगुण-मालिका है सजाती॥

पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ये धर्मध्यान के चार भेद ही जिनके दैनिक जीवन के अंग हो जाते हैं, आर्त और रौद्र ध्यान जिनके पास फटकने भी नहीं पाता तथा अष्ट मदों को जलाकर जो भस्म कर चुके हैं, हे श्रेणिक! ऐसे ही आत्मबल में श्रेष्ठ पुरुष इस माला को अपने हृदय पर पहिरने के अधिकारी हुआ करते हैं।

आज्ञा सुवेदं उपशम धरेत्वं, क्षायिकं शुद्धं जिन उक्त सार्धं।
मिथ्या त्रिभेदं मल राग खंडं, ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं ॥२९॥

जो श्रेष्ठतम नर वेदक व उपशम, सम्यक्त्व के हैं शुचि शुद्ध धारी।
मिथ्यात्व से हीन, है प्राप्त जिनको, सम्यक्त्व क्षायिक-सा रत्न भारी॥
मद-राग से जो रहित सर्वथा हैं, जो जानते जिन-कथित तत्व पावन।
वे ही हृदस्थल पर देखते हैं, नित राजती, मालिका यह सुहावन॥

आज्ञा, वेदक, उपशम और क्षायिक सम्यक्त्व के जो पूर्णरूपेण धारी हो जाते हैं, तीन प्रकार के मिथ्यात्वों को जो खंड खंड करके एक ओर डाल देते हैं तथा कर्मों के पहाड़ को रजकणों में मिला देने का पुरुषार्थ जिनमें जाग्रत हो जाता है, हे श्रेणिक सुनो! यह अध्यात्ममाला उनके ही कंठ में निवास करती है।

अंधश्रद्धा से नहीं, विवेकपूर्वक जिन-वचनों पर विश्वास करने को आज्ञा सम्यक्त्व जानना।

जे चेतना लक्षणो चेतनेत्वं, अचेतं विनासी असत्यं च त्यक्तं ।
जिन उक्त सत्यं सु तत्वं प्रकाशं, ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलितं ॥३०॥

चैतन्य-लक्षण-मय आत्मा के, हैं जो निराकुल, निश्चल पुजारी ।
अनृत, अचेतन, विनाशीक, पर में, जिनको नहीं रंच ममता दुखारी ॥
जिनके हृदय में जिन उक्त तत्वों, की नित्य जलती संतप्त ज्वाला ।
उनके हृदय-कंठ को ही जगाती, श्रेणिक सुनो ! यह अध्यात्म-माला ॥

हे श्रेणिक ! और सुनो कि यह माला किसके गले में जयमाल डालती है, उसके जो चैतन्य लक्षण मय आत्मा का बिलकुल और निश्चल पुजारी होता है तथा अचेतन, बिनाशीक और मिथ्या पदार्थों में जिसे रंचमात्र भी श्रद्धा नहीं होती और भगवान के वचनों से जिसका हृदय तीनों काल प्रकाशित रहता है और तत्त्वों का प्रकाश जिसके हृदय में नित नये ज्योति के पुंज बिखराया करता है।

जे शुद्ध बुद्धस्य गुण सस्य रूपं, रागादि दोषं मल पुंज त्यक्तं ।
धर्म प्रकाशं मुक्ति प्रवेशं, ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं ॥३१॥

जिन शुद्ध जीवों को दिख चुकी है, निज आत्मकी माधुरी मूर्ति बाँकी ।
जिनके दृगों के निकट झूलती है, प्रतिपल सुमुखि मुक्ति की दिव्य झाँकी ॥
जो रागद्वेषादि मल से परे हैं, जो धर्म की कान्ति को जगमगाते ।
इस मालिका को वही शुद्ध दृष्टी, अपने हृदय पर फबी देख पाते ॥

जिन्हें अपनी आत्मा की विशुद्ध झाँकी दिख चुकी है—जो शुद्ध बुद्ध परमात्मा और अपनी आत्मा में अब कोई भेद नहीं पाते हैं—राग द्वेष और संसार के अन्य सभी दोष जिनसे कोसों दूर भाग चुके हैं तथा जिनकी यह स्थिति हो गई है कि धर्म में आचरण कर वे अब धर्म के स्थंभ बन गये हैं—धर्म उनसे अब प्रकाशमान होने लगा है। हे राजा श्रेणिक ! ऐसे ही नरश्रेष्ठ इस अध्यात्म गुण की मालिका से अपना यह देव-दुर्लभ जीवन सजाते हैं और उन्हीं के कंठ में रहकर यह समकित माल तीनों काल किल्लोल किया करती है।

जे सिद्ध नंतं मुक्ति प्रवेशं, शुद्धं स्वरूपं गुण माल ग्रहितं ।
जे केवि भव्यात्म सम्यक्त्व शुद्धं, ते जात मोक्षं कथितं जिनेंद्रैः ॥३२॥

अब तक गये विश्व से जीव जितने, चोला पहिन मुक्ति का शिद्ध शाला ।
अपने हृदय पर सजा ले गये हैं, वे सब यही आत्म-गुण-पुष्पमाला ॥
इस ही तरह शुद्ध सम्यक्त्व धरकर, जो माल धरते यह सौख्यकारी ।
कहते जिनेश्वर वे मुक्त होकर, बनते परमब्रह्म आनन्दधारी ॥

हे राजा श्रेणिक सुनो ! मैं तुम्हें सार की बात बताता हूँ। अब तक जितने भी जीव सिद्धि का चोला पहिन कर मुक्तिशाला को पहुँचे हैं सबके वक्षस्थल इसी मालिका से सुशोभित हुए थे और सदैव ही रहेंगे। तथा आगे जो जीव इस समकित माल को पहिनेंगे वे नररत्न भी मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त करेंगे।

यह मालिका क्या है, केवल अपने शुद्ध स्वरूप के गुणों का सम्यक् संकलन।

वैभव या नश्वर लौकिक वस्तुओं से इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता, किन्तु उत्तरोत्तर साधनाओं के निकट यह स्वयं अपने आप ही चली आती है। जो भव्य जन शुद्ध सम्यक्त्व को प्राप्त कर आगे भी इसी तरह साधना करते जायेंगे, जिनवाणी का कथन है कि वे भी निश्चय से इसी समकित माल को धारण कर मुक्ति का वह साम्राज्य पाते जायेंगे जो कल्पना से परे है।

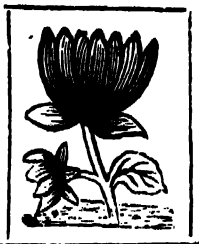

अथ कमल बत्तीसी

सम्यक्ज्ञान ही मुक्ति का मार्ग है

आत्मा के स्वभाव को समझने का मार्ग सीधा और सरल है। यदि यथार्थ मार्ग को जानकर उस पर धीरे धीरे चलने लगे तो भी पंथ कटने लगे, परन्तु यदि मार्ग को जाने बिना ही आंखों पर पट्टी बांधकर तेली के बैल की तरह चाहे जितना चलता रहे तो भी वह घूम घामकर वहीं का वहीं बना रहेगा। इसी प्रकार स्वभाव का सरल मार्ग है। उसे जाने बिना ज्ञान नेत्रों को बन्द करके चाहे जितना उलटा सीधा करता रहे और यह माने कि मैंने बहुत कुछ किया है; परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि भाई तूने कुछ नहीं किया, तू संसार का संसार में ही स्थित है, तू किंचित् मात्र भी आगे नहीं बढ़ सका। तूने अपने निर्विकार ज्ञानस्वरूप को नहीं जाना, इसलिये तू अपनी गाड़ी को दौड़ाकर अधिक से अधिक अशुभ से खींचकर शुभ में ले जाता है और उसी को धर्म मान लेता है, परन्तु इससे तो तू घूम घामकर वहीं का वहीं विकार में ही आ जमता है। विकार-चक्र में चक्कर लगा कर यदि विकार से छूटकर ज्ञान में नहीं आया तो तूने क्या किया? कुछ भी नहीं। —'सम्यग्दर्शन'

श्री तारणस्वामी—

तारण-वाणी

●

तृतीय धारा (कमलबत्तीसी)

卐

तत्वं च परम तत्वं परमप्पा, परम भाव दरसीए।
परम जिनं परमिस्टी, नमामिहं परम देवदेवस्य ॥१॥

तत्वों में जो तत्व परम हैं, भाव परम दरशाते।
परम जितेन्द्रिय परमेष्ठी जो, परमेश्वर कहलाते॥
सब देवों में देव परम जो, वीतराग, सुख-साधन।
ऐसे श्री अरहन्त प्रभू को, करता मैं अभिवादन॥

जो तत्त्वों में परम तत्व परमात्म स्वरूप जो आत्माएँ श्रेष्ठतम भावों को प्राप्त कर चुकी हैं, ऐसी उन आत्माओं को जो पंच परमेष्ठी पद धारी देवों के द्वारा भी वंदनीय हैं उन्हें मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ। यह आदि मंगल श्री तारन स्वामी ने किया है, यह नमस्कार व्यक्तिवाचक नहीं, गुणवाचक है। 'जैनधर्म में व्यक्ति की नहीं, गुणों की ही मान्यता की गई है।' बस यहीं से अध्यात्म-वाद और इसके विपरीत मान्यताओं में जड़वाद का सिद्धान्त बन जाता है।

जिन वयनं सद्दहनं, कमलसिरि कमल भाव उववन्नं ।
आर्जव भाव संजुत्तं, ईर्ज स्वभाव मुक्ति गमनं च ॥२॥

पतितोद्धारक जिनवाणी के, होते जो श्रद्धानी ।
आत्म-कमल से प्रगटैं, उनके, ही भव-भाव भवानी ॥
आत्मबोध का होजाना ही, आकुलता जाना है ।
आकुलता का जाना ही बस, शिव सुख को पाना है ॥

जो पतितोद्धारक जिनवाणी में अटूट श्रद्धा रखते हैं उनके हृदय से, कमल के समान निराकुल और पवित्र भावों की उत्पत्ति होती है, क्योंकि जहां आत्मबोध हो जाता है, वहां आकुलता समूल नष्ट हो जाती है और जहां आकुलता नहीं वहाँ मुक्ति का द्वार तो फिर खुला ही है, ऐसा समझो।

★

अन्मोयं न्यान सहावं, रयनं रयन स्वरूपममल न्यानस्य ।
ममलं ममल सहावं, न्यानं अन्मोय सिद्धि संपत्ति ॥३॥

ज्ञान--स्वभाव है, स्वत्व सनातन, आत्मतत्व का प्यारा ।
रत्नत्रय से है प्रदीप्त वह, रत्न प्रखरतम न्यारा ॥
कर्मों से निर्मुक्त सदा वह, शुचि स्वभाव का धारी ।
जो उसमें नित रत रहते वे, पाते शिव सुखकारी ॥

ज्ञान, आत्मा का एक जन्मसिद्ध और सनातन गुण है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीन रत्नों से वह सदैव ही प्रदीप्त रहता है।

कर्मों के बंधनों से यह नितान्त निर्मुक्त है, अतः ऐसे निर्मल स्वभाव के धारी आत्मतत्त्व का जो ज्ञानी चिंतवन करते हैं, वे निश्चय ही उस सिद्धि-सम्पत्ति के अधिकारी बनते हैं। तात्पर्य यह कि-आत्मा का अपना जो ज्ञान स्वभाव, उससे प्रीति करना ही एकमात्र मोक्षप्राप्ति का उपाय है, साधन है।

जिनयति मिथ्या भावं, अनृत असत्य पर्जाव गलियं च।
गलियं कुन्यान सुभावं, विलयं कम्मान तिविह जोएन ॥४॥

आत्म-मनन से मिथ्यादर्शन; ईंधन-सा जल जाता।
अनृत, अचेतन, असत् पदों में, मोह न फिर रह पाता॥
'सोऽहं' की ध्वनि क्षय कर देती, कुज्ञानों की टोली।
आत्म-चिन्तवन रचदेता है, अष्ट मलों की होली॥

आत्ममनन से मिथ्यादर्शन, ईंधन के समान जलकर भस्म हो जाता है, जिसका फल यह होता है कि अनृत, अचेतन और असत् पदार्थों में फिर मोह रहता ही नहीं।

कुज्ञानों का समूह आत्म-मनन की ध्वनि को सुनकर पलायमान हो जाता है और अष्ट कर्मों की तो यह आत्म-मनन मानों होली ही रचकर भस्मीभूत कर देता है।

नन्द आनन्दं रूवं, चेयन आनन्द पर्जाव गलियं च।
न्यानेन न्यान अन्मोयं, अन्मोयं न्यान कम्म षिपनं च ॥५॥

परम ब्रह्म में जब रत होता, मन-मधुकर-मतवाला।
सत् चित्, आनन्द से भर उठता, तब अंतर का प्याला॥
ज्ञानी चेतन, ज्ञान-कुण्ड में, खाता फिर फिर गोते।
मलिन भाव और सबल कर्म तब, पल पल में क्षय होते॥

जिस समय यह मन परम ब्रह्म स्वरूप शुद्धात्मा के चिंतवन में लीन होता है, उस समय सत् चित और आनन्द से अंतरंग हृदय भर जाता है। होता यह है कि चेतन के ज्ञान कुण्ड में बार बार गोता लगाने से, हमारी मलिन आत्मा के समस्त मलिन भाव और कर्म क्रमशः क्षीण होने लगते हैं, जो कर्मावरण क्षीण होने से हमें हमारा वास्तविक स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगता है। इसी का दूसरा नाम सम्यक्त्व का उदय है अथवा आत्म-साक्षात्कार हो जाना है।

कम्म सहावं षिपनं, उत्पन्न षिपिय दिष्टि सद्भावं ।
चेयन रूव संजुत्तं, गलियं विलयंति कम्म बंधानं ॥६॥

कर्मों का नश्वर स्वभाव है, जब वे खिर जाते हैं ।
क्षायिक-सम्यग्दर्शन-सा तब, रत्न मनुज पाते हैं ॥
क्षायिक सम्यग्दृष्टी नित प्रति, आत्म-ध्यान धरता है ।
जन्म जन्म के कर्मों को वह, क्षण में क्षय करता है ॥

कर्मों का स्वभाव नश्वर है—क्षयशील है और जब वे खिरने लग जाते हैं, तब ज्ञानी के हाथों में मानों एक अनुपम रत्न की प्राप्ति हो जाती है जिसे क्षायिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टी पुरुष अपने स्वभाव के अनुरूप ही आत्म-अर्चना में मग्न रहता है, जिससे जन्म जन्म के संचित कर्मों को वह अल्पकाल में ही नष्ट कर देता है और केवलज्ञान लक्ष्मी का अधिपति बनकर पंचमगति पा लेता है।

★

मन सुभाव संषिपनं, संसारे सरनि भाव षिपनं च ।
न्यान बलेन विसुद्धं, अन्मोयं ममल मुक्ति गमनं च ॥७॥

इस चंचल मन का स्वभाव है, नाशवान प्रिय भाई ।
नश्वर है मिथ्यादर्शन की, भी प्रकृति दुखदाई ॥
आत्मज्ञान ही सरल शुद्ध, भावों को उपजाता है ।
सरल शुद्ध भावों के बल से, ही नर शिव पाता है ॥

मन का स्वभाव भी नश्वर है, और मिथ्यादर्शन की प्रवृत्ति भी शाश्वत नहीं है, क्षीण होने वाली है। आत्मज्ञान से मन की प्रकृति और मिथ्यादर्शन की प्रकृति ये दोनों नष्ट हो जाती हैं और उनकी जगह सरल और शुद्ध भाव ग्रहण कर लेते हैं और इन सरल शुद्ध भावों के बल पर ही मनुष्य मुक्तिलोक की अपार सम्पदा का अधिकारी बन जाता है। अतः शुद्ध भावों की जाग्रति एवं रक्षा और दिन प्रति दिन वृद्धि करनी चाहिये, बस यही मनुष्यजीवन की सार्थकता है, सारभूत पुरुषार्थ है, मोक्ष का उपाय है।

वैरागं तिविहि उवनं, जनरंजन रागभाव गलियं च ।
कलरंजन दोष विमुक्कं, मनरंजन गारवेन तिक्तं च ॥८॥

भव, तन, भोगों से निस्पृह, बन जाता आत्म-पुजारी ।
जन-रंजन गारव न उसे रह, देता दुख दुखकारी ॥
तन-रंजन के य से वह, छुटकारा पा जाता है ।
मन-रंजन गारव भी उसके, पास न फिर आता है ॥

आत्मा का मनन करने वाला, जनरंजन, तन रंजन, और मन रंजन इन तीनों भावों से छुटकारा पा जाता है। आत्मज्ञान होने पर ज्ञानी को न तो फिर लोक को रंजायमान अर्थात् प्रसन्न करने की प्रवृत्ति रहती है, और न तन को व मन को भी। इन तीनों की ओर से वह पूर्ण उदासीन ही बन जाता है। उसके चित्त में तो केवल वैराग्य ही किल्लोलें करता है।

दर्सन मोहंध विमुक्कं, रागं दोषं च विषय गलियं च ।
ममल सुभाउ उवन्नं, नन्त चतुस्टये दिस्टि संदर्सं ॥९॥

दर्शन-मोह से हो जाता है, मुक्त आत्म का ध्यानी ।
रागद्वेष से उसकी ममता, हट जाती दुखदानी ॥
घट में उसके आत्म-भाव का, हो जाता उजियाला ।
नंत चतुष्टय की जिसमें नित, जगती रहती ज्वाला ॥

आत्म-ध्यानी पुरुष दर्शनमोह से मुक्त हो जाता है; राग द्वेष से उसकी ममता घट जाती है और उसके घट में आत्मभाव का सुन्दर उजियाला हो जाता है। वह उजियाला जिसमें अनन्त चतुष्टय की प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती रहती है।

तिअर्थं सुद्ध दिष्टं, पंचार्थं पंच न्यान परमेस्टी ।
पंचाचार सु चरनं, सम्मत्तं सुद्ध न्यान आचरनं ॥१०॥

सम्यग्दृष्टी नितप्रति निर्मल, रत्नत्रय को ध्याता ।
पंच ज्ञान, पंचार्थ, पंच प्रभु, का होता वह ज्ञाता ॥
पंचाचारों का नितप्रति ही, वह पालन करता है ।
सब मिथ्या व्यवहार त्याग वह, आत्म-ध्यान धरता है ॥

जिसे आत्मबोध हो जाता है या जो एकमात्र आत्मा का ही पुजारी रहता है वह नित प्रति रत्नत्रय का ही चिन्तवन किया करता है।

पांचों ज्ञान, पांचों तत्त्व तथा पांचों प्रभु के गुणों का वह पूर्ण ज्ञाता रहता है। पंचाचारों का वह नियम पूर्वक पालन करता है तथा मिथ्या व्यवहारों से वह अपना अंचल छुड़ाकर सदा आत्मध्यान में ही लवलीन रहा करता है। यही सब उसके ज्ञान सहित व सम्यक्त्व सहित वाह्य व अभ्यन्तर आचरण हैं।

दर्सन न्यान सुचरनं, देवं च परम देव सुद्धं च ।
गुरुवं च परम गुरुवं, धर्मं च परम धर्म संभावं ॥११॥

आत्म तत्व ही इस त्रिभुवन में, सच्चा रत्नत्रय है ।
सब देवों का देव वही, परमेश्वर एक अजय है ॥
आत्म तत्व ही सब गुरुओं में, श्रेष्ठ परम गुरु ज्ञानी ।
सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म बस, आत्म तत्व सुखदानी ॥

इस त्रिभुवन में यदि कोई सच्चा रत्नत्रय है तो वह है शुद्धात्मा, सच्चा देव कोई है तो वह है शुद्धात्मा, गुरु यदि सच्चा गुरु है तो वह है शुद्धात्मा और धर्म कोई है तो वह भी शुद्धात्मा ही है, जिसकी विद्यमानता बाहर कहीं नहीं, अपने आप में घट घट में है।

तात्पर्य यह कि—अपने आपकी शुद्धात्म-परिणति ही सम्यक्त्व है और वही संसार सागर से पार लगाने वाला सच्चा धर्म है।

जिन पंच परम जिनयं न्यानं पंचामि अक्षरं जोयं ।
न्यानेय न्यान विर्धं, ममल सुभावेन सिद्धि सम्पत्तं ॥१२॥

आत्म तत्व ही सम्यक्त्वी का, परमेष्ठी पद प्यारा ।
आत्म तत्व ही उसका, केवलज्ञान अलौकिक न्यारा ॥
आत्म तत्व के अनुभव से ही, आत्मज्ञान बढ़ता है ।
आत्मज्ञान के बल पर ही नर, शिवपथ पर चढ़ता है ॥

सम्यग्दृष्टी पुरुष के लिये आत्मतत्त्व ही पमेष्ठी का पद है और वही उसे सिद्ध है, सिद्ध प्रभु व अरहंत प्रभु का केवलज्ञान है । इस आत्म-तत्त्व का अनुभव आत्मज्ञान के बढ़ाने में अत्यन्त ही सह-कारी होता है और यही आत्मज्ञान ही वास्तव में वह नौका या जहाज है जिस पर बैठकर यह मानव संसार सागर से पार हो जाता है ।

चिदानन्द चिंतवनं, चेयन आनन्द सहाव आनन्दं ।
कम्ममल पयडि षिपनं, ममल सहावेन अन्मोय संजुत्तं ॥१३॥

सत्-चित्-आनन्द चेतन में तुम, रमण करो प्रिय भाई !
इससे तुमको होगा अनुभव, एक अकथ सुखदाई ॥
मुरझा जाती है पापों की, आत्म मनन से माला ।
कर्म प्रकृतियों की हो जाती, हिम-सी ठण्डी ज्वाला ॥

हे भाइयो ! तुम सत् चित आनन्द के घर इस आत्मा में रमण करो; इससे तुम्हें एक अवर्णनीय आनन्द की अनुभूति प्राप्त होगी । आत्ममनन से पापों की माला मुरझा जाती है, और कर्म प्रकृतियों की ज्वाला इससे हिम के समान ठंडी-शीतल हो जाती है ।

अप्पा पर पिच्छंतो, पर पर्जाव सल्य मुक्कं च ।
न्यान सहावं सुद्धं, चरनस्य अन्मोय संजुत्तं ॥१४॥

आत्म द्रव्य का पर स्वभाव है, पर द्रव्यों का पर है ।
इस मन में बहता जब ऐसा, ज्ञानमयी निर्झर है ॥
पर परिणतियें, शल्यें तब सब, सहसा ढह जातीं हैं ।
निज स्वरूप की ही तब फिर फिर, झांकी दिखलाती हैं ॥

आत्मद्रव्य का स्वभाव चैतन्य लक्षण कर विभूषित है, जबकि अनात्म-द्रव्यों का स्वभाव केवल जड़-चेतनाहीन है अर्थात् आत्मा से सर्वथा भिन्न है। जिस समय अंतरंग में यह भेदज्ञान का निर्झर बहता है, तो संसार की सारी पर परिणतियें और शल्यें बालू की दीवार के समान अपने आप ढहने लगती हैं और फिर आत्मा के दर्पण में आत्मा को केवल अपनी और केवल अपनी ही विशुद्ध छबि दिखाई देती है। यदि कदाचित किसी कार्य कारण से उसमें पर-परिणति का रंचमात्र भी संचार दृष्टि-गोचर होता है तो उसे वह तत्काल प्रथक् कर देता है।

★

अबम्भं न चवन्तं, विकहा विनस्य विषय मुक्कं च ।
न्यान सुहाव सु समयं, समय सहकार ममल अन्मोयं ॥१५॥

परमब्रह्म में जब चंचल मन, निश्चल हो रम जाता ।
तब न वहां पर अन्य; किन्तु, निज आत्मस्वरूप दिखाता ॥
चारों विकथा, व्यसन, विषय, उस क्षण छुप-से जाते हैं ।
परमब्रह्म में रत मन होता, मल सब धुल जाते हैं ॥

जब परम ब्रह्म परमात्मा के स्वरूप शुद्धात्मा में यह मन निश्चल होकर रम जाता है तब फिर उसकी दृष्टि में केवल एक और एक ही पदार्थ दृष्टिगोचर होता है और वह पदार्थ होता है उसका स्वयं का स्वरूप-आत्मस्वरूप। संसार की सारी व्यर्थ चर्चायें और विषय कषाय उस क्षण जैसे कहीं छिप से जाते हैं और आत्मा के साथ जितने कर्मबंध हैं लगता यह है कि जैसे वे उस समय धीरे धीरे धुल रहे हैं, खिर रहे हैं अर्थात् निर्जरा हो रहे हैं।

जिन वयनं च सहावं, जिनय मिथ्यात कषाय कम्मानं ।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा ममल दर्सए सुद्धं ॥१६॥

जिन-मुख सरसीरुह की है यह, ऐसी प्रिय जिनवाणी ।
मल, मिथ्यात्व, कषायें सबको, पल में हरती ज्ञानी ॥
आत्मतत्व ही शुद्ध तत्व है, जिन प्रभु कहते भाई ।
आत्म-मुकुर में ही बस तुमको, देंगे प्रभु दिखलाई ॥

निश्चयनय का यह जो कुछ भी कथन है यह परम्परा से ही चला आया है, और इसके मूल में जिनवाणी का ही श्रोत झर झर कर रहा है। जिनवाणी का कथन है कि हे भाइयो! संसार में केवल शुद्धात्मा ही एक विशुद्ध तत्त्व है और इसी तत्त्व के दर्पण में तुम्हें परमेश्वर की माधुरी छवि दृष्टिगोचर होगी।

जिन दिष्टि इष्टि संसुद्धं, इस्टं संजोय विगत अनिष्टं ।
इस्टं च इस्ट रूवं, ममल सहावेन कम्म संषिपनं ॥१७॥

जिनवाणी की श्रद्धा हिय में, शुचि पावनता लाती ।
विरह अनिष्टों से, इष्टों से, यह संयोग कराती ॥
त्रिभुवन में सबसे मृदुतम बस, आत्म-मनन की प्याली ।
आत्म-मनन से ही टूटेगी, कर्म-कमठ की जाली ॥

जिनवाणी की श्रद्धा हृदय में पूर्ण विशुद्धता का सृजन करती है, जिससे अनिष्ट पदार्थों से तो हमारा छुटकारा हो जाता है और इष्ट पदार्थ हमें बिना प्रयास किये ही प्राप्त हो जाते हैं। भगवान का यह वचन है कि त्रिभुवन में सबसे इष्ट वस्तु यदि कोई है तो वह है शुद्धात्मा की अर्चना और शुद्धात्मा की अर्चना में ही यह शक्ति विद्यमान है कि वह कर्म के लोह-बंधनों को जर्जर करके तोड़ सके।

अन्यानं नहि दिट्ठं, न्यान सहावेन अन्मोय ममलं च।
न्यानंतरं न दिट्ठं, पर पर्जाव दिट्ठि अंतरं सहसा ॥१८॥

क्षायिक सम्यग्दृष्टी में, अज्ञान नहीं रहता है।
ज्ञान-तरंगों पर चढ़, नित वह, शिव-सुख में बहता है॥
आत्म-ज्ञान में अंतर उसके, नेक नहीं दिखलाता।
भेद-भाव, पर परिणतियों में, पर सहसा आ जाता॥

आत्ममनन करने वाले विज्ञानी के अंतरंग में अज्ञान का वास ढूंढे से भी नहीं मिलता है और वह नित्य प्रति ज्ञान की तरंगों पर ही हिलोरें लिया करता है। समय के प्रभाव से यह नहीं होता कि कभी उसके आत्म-ज्ञान में अन्तर पड़ जाये या न्यूनता आ जाये। हां, यह अवश्य हो जाता है कि जो परिणितियें कल उसमें अन्तरंग में विद्यमान थीं, वे आज वहाँ दिखाई भी न दें और उनकी जगह शुद्ध भावनाओं की नई तरंग ले ले। पर परिणतियों से तो उसे भेदभाव और विशेष भेदभाव उत्पन्न हो जाता है, उन्हें तो वह अपने में फटकने भी नहीं देता-स्पर्श भी नहीं करने देता।

अप्पा अप्प सहावं, अप्पसुद्धप्प ममल परमप्पो।
परम सरूवं रूवं, रूवं विगतं च ममल न्यानं च ॥१९॥

आत्म द्रव्य ही है परमोत्तम, शुद्ध स्वरूप हमारा।
वह ही है शुद्धात्म यही है, परमब्रह्म प्रभु प्यारा॥
त्रिभुवन में चेतन-सा उत्तम, रूप न और कहीं है।
है यह ज्ञानाकार, अन्यतम इसका रूप नहीं है॥

हमारे शुद्ध स्वरूप की यदि कहीं कोई छवि है तो वह हमारी आत्मा में विद्यमान है। हमारी वह आत्मा इसी लिये हमें शुद्धात्मा है और इसी लिये परमात्मा। तीनों लोक में इस आत्मा सा ज्ञानाकार उत्तम पदार्थ न कहीं है और न कभी होगा ही।

ममलं ममल सरूवं, न्यान विन्यान न्यान सहकारं ।
जिन उत्तं जिन वयनं, जिन सहकारेन मुक्तिगमनं च ॥२०॥

जिनके अमृत-वचन मोक्ष से, मृदु फल के दायक हैं ।
हस्तमलकवत् जो त्रिभुवन के, घट घट के ज्ञायक हैं ॥
ऐसे जिन प्रभु भी यह कहते, चेतन अविकारी है ।
आत्म-ज्ञान ही पंच ज्ञान के, पथ में सहकारी है ॥

जिनके अमृत रूपी वचन मोक्ष का सा मधुर फल देने वाले हैं तथा जो त्रिभुवन के घट घट के ज्ञाता हैं, ऐसे जिनेन्द्र प्रभु भी केवल एक ही बात कहते हैं और वह यही कि हे भव्यो ! तुम्हारे घट में जो आत्मा का वास है तुम उसी के ज्ञान गुणों में तल्लीन होकर केवल उसी का मनन करो, क्योंकि वह आत्मा चेतनता से युक्त एक निर्विकार पदार्थ है, तथा केवलज्ञान की उत्पत्ति भी आत्मज्ञान से ही होती है।

षट्काई जीवानां, क्रिया सहकार ममल भावेन,
सत्तु जीव सभावं, कृपा सह ममल कलिष्ट जीवानं ॥२१॥

अनिल, अनल, जल, धरणि, वनस्पति, औ त्रस तन में ज्ञानी !
पाये जाते हैं वसुधा पर, सब संसारी प्राणी ॥
इन जीवों पर दयाभाव ही, समताभाव कहाता ।
चेतन का यह चिर-स्वभाव है, भाव-विशुद्ध बढ़ाता ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और वनस्पति इन सबमें तथा त्रस पर्यायों में अगणित षट्कायिक जीवों का वास है। इन जीवों पर दया भाव करना ही समता भाव कहलाता है और यह समता भाव चेतन का चिर-स्वभाव है जिसके बल पर भावविशुद्धि में नितप्रति वृद्धि होती रहती है। षट्काय के सभी जीवों को अपना शरीर मोह के वशीभूत इष्ट लगता है, उसमें दुःख का भान कराने का नाम हिंसा है और सुख-साता का भान कराना दया करना है।

एकांत विप्रिय न दिट्ठं, मध्यस्थं ममल शुद्ध सब्भावं ।
सुद्ध सहावं उत्तं, ममल दिट्ठि च कम्म षिपनं च ॥२२

ज्ञानी जन एकान्त विपर्यय, भाव न मन में लाते ।
स्याद्वाद-नय पर चढ़कर वे, मध्य-भाव अपनाते ॥
भावों में शुचिता आना ही, कर्मों का जाना है ।
कर्मों का जाना ही भाई ! शिव-पथ को पाना है ॥

ज्ञानी जन एकान्त, विपर्यय या एकांगी भाव को कभी भी अपने मन में स्थान नहीं देते, प्रत्युत वे मध्यस्थ भाव ही सदैव रखते हैं। मध्यस्थ भाव अपनाने से भावों में विशुद्धता आती है; भाव विशुद्ध होने से कर्मों की बेड़ियां टूटने से उस स्थल की प्राप्ति हो जाती है जिसके लिये मनुष्य कोटि कोटि वर्षों पर्यन्त तप करता है फिर भी कदाचित् उस स्थल-मोक्षस्थान को नहीं पाता ।

सत्वं क्लिष्ट जीवा, अन्मोयं सहकार दुग्गए गमनं ।
जे विरोह सभावं, संसारे सरनि दुःषवीयम्मि ॥२३॥

जो नर संसारी जीवों को, पीड़ा पहुँचाते हैं ।
या पर से दुख पहुँचा उनको, जो अति सुख पाते हैं ॥
ऐसे दुष्टों का होता बस, नर्क-स्थल में डेरा ।
असम-भाव जिसके, उसको बस, मिलता नर्क बसेरा ॥

जो मनुष्य संसारी-षट्काय के जीवों को पीड़ा पहुँचाते हैं ऐसे उन दुष्टों का बसेरा केवल नर्क में ही होता है, क्योंकि सिद्धांत इस बात को उच्च स्वरों से कहता है कि जिसके भावों में विषमता (हिंसक क्रूरता) रहती है उसको केवल नर्क में ही डेरा मिलेगा। अथवा वे भव भव के लिए दुखों का ही बीज बोते रहेंगे। तात्पर्य यह कि विषम भावों से विषम योनियों को प्राप्त होगा यह संसारमान्य सिद्धान्त है, केवल एक जैनधर्म का ही नहीं।

न्यान सहाव सु समयं, अन्मोयं ममल न्यान सहकारं ।
न्यानं न्यान सरूवं, ममलं अन्मोय सिद्धि सम्पत्तं ॥२४॥

आत्म-सरोवर में रमना ही, ज्ञान-स्वरूप है भाई !
आत्मज्ञान से ही मिलता है, केवलज्ञान सुहाई ॥
आत्मज्ञान ही से पाता नर, पद अरहन्त सुखारी ।
आत्मज्ञान के बल पर ही नर, बनते शिव-अधिकारी ॥

आत्म-सरोवर में रमण करना और ज्ञान-स्वरूप में आचरण करना ये दोनों शब्द एक ही पर्याय के वाची हैं जिनसे आत्मज्ञान और कालान्तर में केवलज्ञान की उपलब्धि होती है।

आत्मज्ञान से ही मनुष्य बढ़ते बढ़ते अरहन्त पद को प्राप्त कर लेता है और अरहन्त पद से ही वह मुक्ति के साम्राज्य में जाकर अपना निवास बना लेता है।

इष्टं च परम इष्टं, इष्टं अन्मोय विगत अनिष्टं ।
पर पर्जायं विलयं, न्यान सहावेन कम्मजिनियं च ॥२५॥

त्रिभुवन में सर्वोत्कृष्ट बस, इस चेतन का पद है ।
निज स्वरूप में रमना ही बस, अहित-विगत सुख-प्रद है ॥
आत्म मनन से कर्मों की सब, बेड़ी कट जाती हैं ।
इसके सन्मुख पर पर्यायें, पास नहीं आती हैं ॥

त्रिभुवन में यदि कोई सबसे श्रेष्ठ पद है तो वह केवल एक शुद्धात्मा का ही है, और यदि कोई सर्वोच्च सुख प्रदान करने वाली स्थिति है तो वह है आत्मरमण। आत्मरमण से कर्मों की सारी बेड़ियां कटकर खंड खंड हो जाती हैं और जब तक आत्मरमण की यह स्थिति विद्यमान रहती है तब तक संसार की पर पर्यायें इसके सम्मुख पदार्पण नहीं करतीं—वे दूर रहती हैं।

जिन वयन सुद्ध सुद्धं, अन्मोयं ममल सुद्ध सहकारं।
ममलं ममल सरूवं, जं रयनं रयन सरूव संमिलियं ॥२६॥

श्री जिनवाणी निश्चयनय का, प्रिय सन्देश सुनाती।
त्रिभुवनतल में उससी पावन, वस्तु न और लखाती॥
ज्ञान-सिन्धु आतम का भव्यो! रूप परम पावन है।
आत्म-मनन से ही मिलता बस, रत्नत्रय सा धन है॥

करुणामयी जिनवाणी निश्चय का पवित्र सन्देश सुनाते हुए हमको जगा जगाकर कहती है कि हे भव्यो! ज्ञान-सिन्धु आत्मा का रूप सबसे विशुद्धतम रूप है, तुम इसी का मनन करो, क्योंकि मोक्ष के द्वार रत्नत्रय की प्राप्ति केवल आत्म-मनन से ही होती है।

सेष्टं च गुन उववन्नं, सेष्टं सहकार कम्म संषिपनं।
सेष्टं च इष्ट कमलं, कमलसिरि कमल भाव उववन्नं ॥२७॥

जगता है शुद्धोपयोग गुण, आत्म-मनन से भाई।
जिसके बल से गल जाते सब, कर्म महा दुखदाई॥
कर्म काट, अरहन्त महापद, आत्म-कमल पाता है।
और यही निज-रूप रमण फिर, शिवपुर दिखलाता है॥

भव्यो! आत्ममनन से अन्तर में शुद्धोपयोग की जागृति होती है—शुद्धोपयोग का संचार होता है जिसके द्वारा आत्मा के प्रदेशों से चिपटे हुए सारे कर्म पृथक होने लग जाते हैं कि यही आत्मा अरहंत पद प्राप्त कर लेती है। अरहन्त पद सन्निकट-प्राप्त होने पर मुक्ति का मार्ग तो क्या वह स्वयं मुक्त स्वरूप हो जाता है और समय आने पर द्रव्यमुक्त हो जाता है—मोक्षधाम में जा विराजता है।

जिन वयनं सहकारं, मिथ्या कुन्यान सल्य तिक्तं च ।
विगतं विषय कषायं, न्यानं अन्मोय कम्म गलियं च ॥२८॥

भव-सागर अति दुर्गम, दुस्तर, थाह न इसकी प्राणी !
इसको तारन में समर्थ बस, एक महा जिनवाणी ॥
जिनवाणी कुज्ञान, कषायें, शल्य, विषय क्षय करती ।
निश्चयनय का गीत सुना यह, सब कर्मों को हरती ॥

यह संसार सागर महा गहन और दुस्तर है, इससे पार करने में केवल एक जिनवाणी ही समर्थ है। जिनवाणी—कुज्ञान, कषायें, शल्य और विषय इन सबका क्षय कर देती है और निश्चय नय का गीत सुनाकर समस्त कर्मों को क्षय कर देती है। ऐसी जिनवाणी की शरण लेना व उसकी आज्ञानुसार चलना ही कल्याणकारी है। तात्पर्य यह कि कर्मों का क्षय करने वाली जिनवाणी ही है।

★

कमलं कमल सहावं, षट्कमलं तिअर्थ ममल आनन्दं ।
दर्सन न्यान सरूवं, चरनं अन्मोय कम्म संषिपनं ॥२९॥

आत्म-कमल अरहन्त रूप में, जिस क्षण मुसकाता है ।
उस क्षण ही, षट गुण त्रिरत्न-दल उसको विकसाता है ॥
दर्शन-ज्ञान-सरोवर में तब, आत्म रमण करता है ।
और अघातिय कर्म नाश, वह शिव में पग धरता है ॥

ज्ञान सूर्य के उदय होने पर जिस समय आत्म-कमल प्रफुल्लित होता है उस समय शरीर रचना में जो छह कमल वे सब प्रफुल्लित हो जाते हैं और तीन रत्न सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का विकास हो जाता है। इस स्थिति में ज्ञानी आत्मरमण में तल्लीन हो जाता है और अघातिया कर्मों का विध्वंस करके वह मुक्ति नगर की ओर अग्रसर हो जाता है। केवलज्ञानी हो जाता है।

संसार सरनि नहु दिट्ठं, नहु दिट्ठं समल पर्जाय सुभावं ।
न्यानं कमल सहावं, न्यान विन्यान ममल अन्मोयं ॥३०॥

सिद्ध न संसारी जीवों से, भव भव गोते खावें ।
अशुचि मलिन परिणतियें उनके, पास न जाने पावें ॥
उनके उर में कमल-सदृश बस, केवलज्ञान विहंसता ।
शुद्ध ज्ञान, सत्-चित् सुख ही बस, उनके हिय में बसता ॥

जो जीव सिद्ध पद प्राप्त कर लेते हैं वे संसार में गोता खाने के लिये फिर यहां कभी नहीं आते, और न फिर उनके पास अशुचि या मलिन परिणतियें ही जाने पाती हैं। उनके अन्तरंग में तो कमल के समान बस केवलज्ञान ही मुस्कुराया करता है और वे तो केवल सत् चित और आनन्द की सम्पदा को प्राप्त कर अपने आप में ही संतुष्ट रहा करते हैं।

जिन उत्तं सद्दहनं, अप्पा परमप्प सुद्ध ममलं च ।
परमप्पा उवलद्धं, परम सुभावेन कम्म विलयन्ती ॥३१॥

'विज्ञो ! अपना आत्म देव ही, है जग का परमेश्वर ।
बरसाते इस वाक्य सुधा को, तारण तरण जिनेश्वर ॥
जो जन, जिन-वच पर श्रद्धा कर, बनता आत्म पुजारी ।
कर्म काट, भवसागर तर वह, बनता मोक्ष-बिहारी ॥

हे विज्ञो ! अपना आत्मदेव ही संसार का एकमात्र परमेश्वर है, ऐसा संसार पार करने वाली जिनवाणी का कथन है। जो मनुष्य जिनवाणी के इस कथन पर श्रद्धापूर्वक आत्मा के पुजारी बनते हैं वे निश्चय से ही कर्म काटकर मुक्ति नगर को प्राप्त कर लेते हैं।

जिन दिष्ट उत्त सुद्धं, जिनयति कम्मान तिविह जोएन।
न्यानं अन्मोय ममलं, ममल सरूवं च मुक्ति गमनं च ॥३२॥

जैसा जिन ने देखा, जैसा वचन-अमिय बरसाया।
वैसे ही शुद्धात्म तत्व का, मैंने रूप दिखाया॥
त्रिविध योग से सतत करेंगे, जो आतम आराधन।
कर्म जीत, वे ज्ञानानन्द हो; पावेंगे शिव पावन॥

मैंने जो यह कथन किया है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है, श्री जिनवाणी के चरण कमलों का अनुसरण करके ही मैंने सब कुछ कहा है।

मेरा विश्वास है कि मन, वचन और काय के नियोग से जो आत्मा का आराधन करेंगे वे अवश्य ही कर्मों के बंध काटकर एक दिन मुक्ति श्री के दर्शन कर अपने जीवन और ज्ञान चक्षुओं को सफल करेंगे। इतना ही नहीं, समय पाकर उसके स्वामी बनकर शाश्वत सुख के भोगी बनेंगे।